THE BOOK WAS DRENCHED

TEXT FLY WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182820
UNIVERSAL
LIBRARY

H 3259

H709.5412
V12B

वाजपेयी, श्रीकृष्णदत्त

ब्रज की कला 1955.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 709.5412 V12 B Accession No. H 3259

Author वाजपेयी, श्रीकृष्णदत्त

Title ब्रज की कला 1959

This book should be returned on or before the date last marked below.

ब्रज की कला

ब्रज की कला

लेखक :
श्रीकृष्णदत्त वाजपेयी एम० ए०
अध्यक्ष प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
सागर विश्वविद्यालय, सागर।

प्रकाशक :
देशबन्धु पुस्तकालय, मथुरा.

प्रथम संस्करण अक्टूबर १९५९
मूल्य दो रुपया

*

*

लेखक	:	श्री कृष्णदत्त वाजपेयी एम० ए०
प्रकाशक	:	देशबन्धु पुस्तकालय, मथुरा।
मुद्रक	:	लोकसाहित्य प्रेस, मथुरा।
सर्वाधिकार	:	लेखक द्वारा सुरक्षित

प्रकाशकीय

मथुरा के देशबन्धु पुस्तकालय ने ब्रज जनपद की साहित्यक संस्थाओं में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। नियमित रूप से संचालित पुस्तकालय एवं वाचनालय के अतिरिक्त इस संस्था द्वारा और भी अनेक महत्वपूर्ण कार्य हुए है। देश के प्रमुख नेताओं, पत्रकारों एवं कलाकारों ने इसकी विविध रचनात्मक प्रवृत्तियों की मुक्त कंठ से प्रशंशा की है। इस संस्था द्वारा आयोजित वार्षिक उत्सव तथा विभिन्न पर्वो पर सम्पन्न सांस्कृतिक आयोजन सदैव ही उच्चकोटि के रहे है इस पुस्तकालय के द्वारा सफल पत्र-प्रदर्शनी का आयोजन हो चुका है।

पिछले वर्षो से 'देशबन्धु' के नाम से यह संस्था अपना एक मुखपत्र प्रकाशित करती रही है जिसका ध्येय ब्रज के साहित्य, संस्कृति एवं लोकजीवन को प्रकाश में लाना रहा है। मासिक पत्रिका के अतिरिक्त इस पुस्तकालय ने मधु-कलश, इकत्तीस कहानियाँ, सत्रह कहानियाँ आदि कई कहानी संग्रह भी प्रकाशित किए हैं।

पिछले वर्ष से इस संस्था ने प्रकाशन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कार्य का श्री गणेश किया है। हमारा ध्येय यह है कि ब्रज प्रदेश से सम्बन्धित साहित्य, कला, सङ्गीत, अभिनय आदि विषयों पर अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखित महत्वपूर्ण ग्रंथों का प्रकाशन किया जावे। हमें प्रसन्नता है कि उत्तर प्रदेश सरकार ने हमारी इस योजना को कार्यान्वित करने के हेतु एक हजार रुपया की आर्थिक सहायता दी है। जिसके अन्तर्गत हम इस समय चार महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित कर रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक "ब्रज की कला" के लेखक श्री कृष्णदत्त वाजपेयी, साहित्य और पुरातत्त्व के क्षेत्र में देश के विशिष्ट विद्वानों में से हैं। इस पुस्तक में ब्रज की विभिन्न कलाओं के इतिहास एव उनके विकास पर प्रकाश डाला गया है। पुस्तक विद्वत्ता पूर्ण होने के साथ साथ रोचक भी है। हमें विश्वास है कि साहित्य प्रेमियों एवं शासन के सहयोग से ब्रज से सम्बन्धित हम अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन कर सकेंगे। ब्रज प्रदेश तो इस प्रकार के साहित्य का अथाह सागर है। उसमें से कुछ भी महत्वपूर्ण रत्न खोजकर जनता के सामने रखकर यह संस्था अपने को गौरवान्वित अनुभव करेगी।

विजयादशमी
संवत् २०१६

शर्मनलाल अग्रवाल
प्रकाशन मन्त्री
देशबन्धु पुस्तकालय, मथुरा.

दो शब्द

ब्रज में ललित कलाओं के उद्भव और विकास का एक लम्बा इतिहास है। ब्रज का मुख्य नगर मथुरा एक महत्वपूर्ण धार्मिक स्थल रहा है यहाँ ईसवी सन् से कई सौ वर्ष पहले स्थापत्य और मूर्तिकला का प्रारम्भ हो चुका था। इस नगर की गणना भारत के प्रधान कला-केन्द्रों में की जाने लगी थी और मथुरा की एक विशेष कलाशैली बन गई थी। ईरान और यूनान की संस्कृतियों का भारतीय संस्कृति के साथ जो समन्वय हुआ उसका मूर्तरूप हमें मथुरा की प्राचीन कला में दिखलाई पड़ता है। शक और कुषाणवंशी राजाओं के शासनकाल में मथुरा की

प्राचीन कला में दिखलाई पड़ता है। शक और कुषाणवंशी राजाओं के शासनकाल में मथुरा की मूर्तिकला को अधिक विकसित होने का अवसर प्राप्त हुआ। उस समय से जैन, बौद्ध तथा वैदिक-भारत के इन तीनों प्रधान धर्मों को यहाँ के सहिष्णुतापूर्ण वातावरण में साथ-साथ बढ़ने का अच्छा अवसर मिला। यह मथुरा के इतिहास में एक बड़ी महत्वपूर्ण घटना कही जा सकती है। ईसवी पूर्व पहली शती से लेकर गुप्त काल के अन्त तक उक्त तीनों धर्मों से सम्बन्धित कलावशेष ब्रज में बड़ी संख्या में उपलब्ध हुए हैं। गुप्तकाल के बाद भी ब्रज में मूर्तिकला और वास्तुकला की उन्नति कई शताब्दियों तक जारी रही, यद्यपि उसमें पहले जैसा सौष्ठव और निजस्व न रहा। दिल्ली सल्तनत के लगभग सवा तीन सौ वर्षों के आधिपत्यकाल में इस कलात्मक विकास में गतिरोध उत्पन्न हुआ। मुगल काल में अकबर के समय ब्रज में जो सांस्कृतिक पुनरुत्थान हुआ, उसके फलस्वरूप साहित्य, सङ्गीत तथा चित्रकला का फिर से उद्धार हो सका। इस पुस्तिका में ब्रज के स्थापत्य या वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला और सङ्गीत—इन चार ललितकलाओं का अलग-अलग अध्यायों का वर्णन किया गया है। पाँचवें अध्याय में मथुरा-कला की विशेषता पर प्रकाश डाला गया है। अन्त में जो चित्र दिए गए हैं उनके लिए मैं राजकीय संग्रहालय, लखनऊ और पुरातत्त्व संग्रहालय, मथुरा के प्रबन्धकों तथा श्री जगन्नाथ अहिवासी के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

—कृष्णदत्त वाजपेयी

भूमिका

मेरे मित्र श्री कृष्णदत्त वाजपेयी मथुरा संग्रहालय के लगभग बारह वर्षों तक अध्यक्ष रहे हैं। अपने उपार्जित परिचय के सार रूप उन्होंने "ब्रज की कला" पुस्तक लिखी है। इसे देखकर मुझे प्रसन्नता हुई। इसमें शूरसेन प्रदेश की कला-सामग्री का संक्षिप्त परिचय पाठकों को मिलेगा।

भारत के सांस्कृतिक इतिहास में मथुरा का वही स्थान है जो यूरुप में एथन्स का। मथुरा में तीन त्रिवेणियों का सङ्गम हुआ ब्राह्मण धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म इन तीनों के अनुयायियों ने मथुरा को अपना मुख्य केन्द्र बनाया। यह पहली त्रिवेणी थी जिसने शूरसेन प्रदेश को पवित्र किया। इसी के फल स्वरूप

ब्राह्मण देवी देवताओं के अनेक विशाल मंदिर एवं बौद्धों और जैनों के भव्य स्तूपों का निर्माण मथुरा में हुआ। उनका यथार्थ रूप में संरक्षण तो नहीं हो सका पर उनसे सम्बन्धित देव मूर्तियाँ, अन्य प्रतिमाएँ, वास्तु सम्बन्धी स्तम्भ, उत्कीर्ण शिलापट्ट, तोरण और वेदिकाएँ इनकी अद्भुत सामग्री मथुरा पुरातत्त्व की छानबीन से प्राप्त हुई है जिसका समृद्ध संग्रह वहाँ के स्थानीय संग्रहालय में सुरक्षित है और एक बड़ा अंश लखनऊ एवं कलकत्ते के संग्रहालयों में भी पहुँच गया है। इस सामग्री को भारतीय कला और धर्म के परिचय की शतसाहस्री संहिता ही कहा जा सकता है। धर्म के समान कला की त्रिवेणी से भी मथुरा की भूमि पवित्र हुई। मथुरा की तीसरी त्रिवेणी भारतीय यूनानी और ईरानी इन तीन संस्कृतियों के सङ्गम से बनी और उसके ओजायमान प्रवाह में धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं का उनमुक्त आदान प्रदान हुआ। उसके पूरे तथ्यों का उद्घाटन अभी नहीं हुआ है पर उसकी प्रभूत सामग्री सौभाग्य से बचगई है। महाभारत के शान्तिपर्वका नाराणीय अध्याय उसी का अङ्ग है। भविष्य का कोई कुशल इतिहास-वेत्ता इस क्षेत्र में अधिक प्रकाश डाल सकेगा, ऐसी आशा है। मथुरा के सांस्कृतिक इतिहास के विविध अङ्गों के विषय में जब जो लिखा जाय स्वागत के योग्य है।

काशी विश्वविद्यालय
२ अक्टूबर १९५९

—वासुदेवशरण अग्रवाल

पुस्तक पर कुछ सम्मतियां

श्री कृष्णदत्तजी वाजपेयी पुरातत्त्व एवं इतिहास के सुप्रसिद्ध विद्वान होने के साथ-साथ ही ब्रज साहित्य के भी प्रमुख विशेषज्ञ हैं। मथुरा के पुरातत्त्व संग्रहालय में रहते हुए उन्होंने हिन्दी संसार को ब्रज का इतिहास, मथुरा परिचय, ब्रज परिचय आदि ब्रज प्रदेश, ब्रज भाषा एवं ब्रज संस्कृति सम्बन्धी बहुमूल्य ग्रन्थ रत्न प्रदान किए हैं। ब्रज की नवीन पुस्तक "ब्रज की कला" भी उसी माला का एक दीप्तिमान रत्न है। ब्रज के सम्बन्ध में ऐसी महत्वपूर्ण पुस्तक अब तक नहीं लिखी गई।

—राजेश दीक्षित

श्री वाजपेयीजी की नवीन पुस्तक 'ब्रज की कला' अत्यन्त परिश्रम तथा मनोयोग पूर्वक लिखी गई है। ब्रज प्रदेश की कलाओं के सम्बन्ध में इस पुस्तक में साँगोपांग वर्णन किया है। इस सुन्दर प्रामाणिक तथा अत्युपयोगी पुस्तक के प्रणयन के हेतु वाजपेयी जी हिन्दी-जगत् विशेषकर ब्रजवासियों की ओर से बधाई के पात्र हैं।

—डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी

"ब्रज की कला" का प्रणयन श्री वाजपेयी जी द्वारा अत्यन्त परिश्रम पूर्वक किया गया है। ब्रज की कलाओं से सम्बन्धित कोई भी महत्वपूर्ण बात छूटने नहीं पाई। आशा है वाजपेयीजी की यह नवीन कृति पाठकों द्वारा अत्यन्त स्नेह पूर्वक अपनाई जाएगी।

डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी

अनुक्रमणिका

१—स्थापत्य	१७
२—मूर्तिकला	३५
३—चित्रकला	५६
४—ब्रज का सङ्गीत	६१
५—मथुरा कला की विशेषता	६८

चित्रसूची

फलक १—(क) हल और मूसल लिए बलराम; समय ई० पूर्व दूसरी श०

(ख) सिर पर दही की मटकी रखे हुए ब्रज की ग्वालिन कुषाण काल

फलक २—(क) मथुरा के दो वेदिका स्तम्भ।
बाईं ओर स्नान के बाद बाल निचोड़ती हुई सुंदरी दिखाई गई है। दाईं ओर अशोक वृक्ष के नीचे प्रसाधिका स्त्री खड़ी है। कुषाण काल

(ख) कालियनाग का दमन करते हुए भगवान् कृष्ण। गुप्त काल

फलक ३—घुघराले बालों सहित बुद्ध का मस्तक। गुप्त काल।

फलक ४—अशोक वृक्ष के नीचे आकर्षक मुद्रा में खड़ी हुई शाल भंजिका स्त्री। गुप्तकाल।

फलक ५—मिट्टी की सर्वाङ्ग सुन्दर स्त्री-मूर्ति।
उसके दाएँ हाथ में फल है; बायाँ हाथ मेखला पर है।
समय ई० चौथी शती

फलक ६—नंदादि का गोकुल से बहिर्गमन। काँगड़ा शैली का चित्र।

फलक ७—दर्पण देखकर शृङ्गार करती हुई सुन्दरी। ब्रज के आधुनिक कलाकार श्री जगन्नाथ अहिवासी की कृति।

फलक ८—बोधि वृक्ष के नीचे अभय मुद्रा में स्थित बुद्ध की सर्वाङ्गपूर्व अभिलिखित मूर्ति; कुषाण काल

★

ब्रज की कला

अध्याय १

स्थापत्य

प्राचीन मथुरा नगर बहुत समय तक जैन तथा बौद्ध धर्म के एक बड़े केन्द्र के रूप में मान्य रहा। इन दोनों धर्मों से संबंधित बहुत से कला-वशेष मथुरा और ब्रज के अन्य स्थानों से प्राप्त हुए हैं।·मथुरा के कंकाली टीला से प्राप्त एक मूर्ति की चौकी पर खुदे हुए द्वितीय शती के एक लेख से पता चला है कि उस समय से बहुत पहले मथुरा में एक बड़े जैन स्तूप का निर्माण हो चुका था। लेख में उस स्तूप का नाम 'देव निर्मित बौद्ध स्तूप' दिया है। वर्तमान कंकाली टीला की भूमि पर बौद्ध स्तूप के निर्माण-समय से लेकर प्रायः ११०० ईसवी तक जैन इमारतों और मूर्तियों का निर्माण होता रहा। बौद्ध इमारतें भी यहाँ बड़ी संख्या में बनीं। सम्राट् अशोक, कनिष्क तथा अन्य शक-कुषाण शासकों द्वारा मथुरा नगर और उसके आस-पास कितने स्तूपों तथा विहारों का निर्माण किया गया।

जब चौथी शती में चीनी यात्री फाह्यान मथुरा आया तब उसने यमुना नदी के दोनों किनारों

पर बीस बौद्ध विहारों को देखा। उसने यहाँ के छह बड़े बौद्ध स्तूपों का भी उल्लेख किया है। मथुरा से प्राप्त शिलालेखों से अब तक अनेक बौद्ध बिहारों का पता चला है उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं।

(१) हुविष्क विहार, (२) स्वर्णकार विहार (३) श्री विहार, (४) चेतीय विहार, (५) चुतक विहार, (६) अपानक विहार (७) मिहिर विहार (८) गुहा विहार, (९) कौष्टकीय विहार, (१०) रोषिक विहार, (११) ककाटिका विहार, (१२) प्रावारिक विहार, (१३) यशा विहार, (१४) खन्ड विहार तथा (१५) हुम्मियकचंयक्क विहार।

खेद है कि इन बौद्ध विहारों में से एक भी इस समय नही बचा, इन इमारतों के निर्माण में ईंटों और पत्थरों का प्रयोग होता था। इनका प्रकार सांची, तक्षशिला, सारनाथ आदि स्थानों में प्राप्त बौद्ध विहारों जैसा रहा होगा, मथुरा में कुषाण काल में सबसे अधिक विहारों का निर्माण हुआ, जैसा कि तत्कालीन अभिलेखों से प्रकट होता है।

ब्रज के प्राचीन बौद्ध एवं जैन स्तूप भी ईंट और पत्थर के बने हुए थे। इनमें सबसे नीचे एक चौकोर आधार बनाया जाता था। उसके ऊपर प्रायः गोलाकार रचना (अंड) होती थी। शीर्ष पर दड (यष्टि) के सहारे छत्र रहता था। कभी-कभी छत्रों की संख्या कई होती थी। स्तूप का बाहरी भाग विविध भाँति के उत्कीर्ण शिला-पट्टों से सजाया जाता था। स्तूप की परिक्रमा के लिए बाड़ा (वेष्टनी) बनाया जाता था, जिसे वैदिका कहते थे। इसमें थोड़ी-थोड़ी दूर पर खड़े खम्भे आड़े पत्थरों (सूची) द्वारा जोड़े जाते थे। खम्भों के सिरों पर जो पत्थर रखे

जाते थे वे 'उष्णीष' या मूर्धस्थ पाषाण' कहलाते थे। वेष्टनी या वेदिका के ये सभी पत्थर विविध भाँति की उकेरी हुई मूर्तियों और अलकरणों से युक्त होते थे। भीतर जाने-आने के लिए वैदिका में प्रायः चारों दिशाओं में एक-एक तोरण द्वार बना रहता था।

स्तूपों में तीर्थंकरों या भगवान् बुद्ध अथवा उनके प्रमुख शिष्यों के पवित्र अवशेष (हड्डी, राख, नख, बाल आदि) रखे जाते थे। जब बुद्ध का देहावसान (निर्वाण) हुआ तब उनके अवशेषों को आठ भागों में विभक्त किया गया और प्रत्येक के ऊपर एक स्तूप की रचना की गई। इसके बाद स्तूप-निर्माण की परम्परा जारी रही। सम्राट् अशोक के लिए कहा जाता है कि उसने भारत के विभिन्न स्थानों पर ८४,००० स्तूपों का निर्माण कराया। प्रसिद्ध है कि उसने मथुरा में भी कई बड़े स्तूप बनवाये। इनमें से तीन का उल्लेख चीनी यात्री हुएन-सांग ने किया है। इस यात्री ने बुद्ध भगवान् के साथियों के अवशेषों पर निर्मित स्तूपों की भी चर्चा की है। अशोक और उसके बाद निर्मित कुछ भग्नावशिष्ट स्तूप सांची, तक्षशिला, सारनाथ आदि स्थानों में विद्यमान है। इनमें कई तो बहुत विशाल हैं। मथुरा में समय समय पर छोटे-बड़े जिन स्तूपों की रचना की गई, उनमें से कई के अवशेष उपलब्ध हुए हैं।

हिंदू मन्दिर—उपर्युक्त जैन तथा बौद्ध इमारतों के अतिरिक्त ब्रज में हिन्दू मन्दिरों का निर्माण बड़ी संख्या में हुआ। इन मन्दिरों की निर्माण-शैली स्तूपों से भिन्न थी। स्तूपों की रचना पवित्र अवशेषों के ऊपर की जाती थी। बाल्मीकि रामायण में सम्भवतः इसी कारण उनके लिए 'श्मशान चैत्य' नाम

आया है। परन्तु मन्दिर को देवताओं के निवास-स्थान के रूप में माना जाता था। इसीलिये उन्हें 'देवालय' कहा जाता था।

मंदिर के भीतर एक या अनेक देवों की मूर्तियों का होना तथा उनकी पूजा होना अनिवार्य माना जाता था। मदिर की रचना में शिखर का प्रदर्शन विशिष्टता का द्योतक माना जाने लगा। शिखर का यह भाव सुमेरु, त्रिकूट, कैलाश आदि पर्वतों से ग्रहण किया गया प्रतीत होता है, मदिर के वहिमार्ग को प्राय: विविध अलंकरणों तथा देव, यक्ष, किन्नर, अप्सरादि की प्रतिमाओं से सजाया जाता था, मथुरा में सम्भवत: जैनो तथा बौद्धों के स्तूपों का निर्माण मदिरों के बनने से पहले प्रारम्भ हुआ। यहाँ हिन्दुओं के सबसे प्राचीन जिम मंदिर का उल्लेख मिला है वह राजा शोडास के राज्यकाल में निर्मित हुआ, ऐसा एक सिरदल पर उत्कीर्ण शिलालेख से ज्ञात हुआ है। इस लेख में लिखा है कि वासुदेव-कृष्ण का चतु:शाला मंदिर, तोरण तथा वैदिका का निर्माण वसु नामक व्यक्ति के द्वारा महाक्षत्रय शोडास के शासन-काल में सम्पन्न हुआ। यह मदिर उस स्थान पर बनवाया गया जहाँ भगवान् कृष्ण का जन्म माना जाता है, हो सकता है कि इसके पहले श्रीकृष्ण का कोई मंदिर मथुरा में रहा हो, पर उसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिला, अन्य हिन्दू देवी-देवताओं की अनेक कुषाण-कालीन मूर्तियाँ ब्रज में मिली है। सम्भव है कि उनमें-से कुछ के मदिरो का निर्माण उस समय या उसके कुछ पहले प्रारम्भ होगया था।

गुप्तकाल में मथुरा में हिन्दू मंदिरों का निर्माण बड़ी संख्या में हुआ। श्रीकृष्ण-जन्मस्थान पर "परम भागवत" चन्द्र-

गुप्त विक्रमादित्य के शासन काल में एक भव्य मंदिर की रचना की गई। चीनी यात्री हुएन साँग ने अपने समय में मथुरा के अनेक हिन्दू मंदिरों के अस्तित्व का उल्लेख किया है, जिनमें बहुत से साधु पूजा करते थे।

दुर्भाग्य से मथुरा में प्राचीन स्थापत्य का कोई ऐसा समूचा उदाहरण आज नहीं बचा, जिससे हम धार्मिक इमारतों, प्रासादों या साधारण मकानों की निर्माण-शैली की प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त कर सकते। इमारतें पत्थर एवं अन्य अवशेषों के रूप में थोड़ी-बहुत सामग्री उपलब्ध हुई है जिसके आधार पर हम मथुरा की कुछ इमारतों की रूपरेखा इस प्रकार दे सकते हैं—प्राचीन प्रासाद या बड़े मकान कई तलों के होते थे, उनमें नीचे के खण्ड से ऊपर जाने के लिए जीने (सोपान मार्ग) होते थे। मकानों में बैठक का कमरा, स्नानागर, भोजन गृह, शयन गृह, शृङ्गार कक्ष, और अन्तःपुर प्रायः अलग-अलग होते थे। यथास्थान खिड़कियाँ (गवाक्ष) भी होती थीं।

मकानों में जो चौखट, दरवाजे, खम्भे आदि लगाए जाते थे, उन्हें लता-वृक्ष, पशु-पक्षी, कमल, मंगलघट, कीर्तिमुख, स्वस्तिक आदि अलंकरणों तथा विविध देवी-देवताओं, यक्ष-किन्नरों, सुपर्ण-विद्याधरों आदि की प्रतिकृतियों से अलकृत किया जाता था। ईंट की बनी इमारतों की बाहरी दीवालों पर अनेक प्रकार की बेल-बूटेदार ईंटें लगाई जाती थीं, जिन पर धार्मिक एवं लौकिक दृश्यों के कलात्मक चित्रण होते थे।

ग्यारहवीं शती के आरम्भ में मथुरा के विशाल मंदिरों को बड़ी क्षति पहुँची, महमूद गज़नवी के मीर मुंशी-अलउत्बी के लेख से ज्ञात होता है कि उस समय मथुरा में हिन्दू मंदिरों की

सख्या बहुत बड़ी थी ; मथुरा को जीतने के बाद महमूद द्वारा कितने ही मंदिर धराशायी किए गए और उनकी मूर्तियाँ तोड़ी गई, मंदिरों की अपार संपत्ति लूटकर महमूद गजनी लौटा।

बारहवीं शताब्दी में मथुरा और उसके आस-पास अनेक बड़े मंदिर थे । जिनका विध्वंस मुसलमान आक्रान्ताओं ने किया। इनमें राजा विजयपाल देव द्वारा ११५० ई० में श्रीकृष्ण जन्मस्थान पर बनवाया गया प्रसिद्ध केशव मंदिर भी था । बारहवी शती से लेकर मुगल सम्राट अकबर के समय तक ब्रज में नए मंदिरों का निर्माण नहीं के बराबर रहा। अकबर और जहाँगीर के समय में मथुरा-वृन्दावन में कुछ मंदिर तथा अन्य इमारतें बनीं, जिनमें से कई अब भी विद्यमान हैं। मुख्य का परिचय यहाँ दिया जाता है—

१. **मथुरा का "शती बुर्ज"**—यह ५५ फुट ऊँचा एक चौंखंडा बुर्ज है, जयपुर के राजा भारमल (बिहारीमल) की रानी इसी स्थान पर अपने मृत पति के साथ सती हुई थीं, उनके लड़के राजा भगवानदास ने अपनी माता की स्मृति में सन् १५७४ ई० में इस स्मारक का निर्माण करवाया, इसका शिखर पहले अधिक ऊँचा था, पर औरङ्गजेब के समय उसका ऊपरी भाग तुड़वा दिया गया।

२. **गोविन्ददेव मन्दिर**—वृन्दावन के प्राचीन मदिरों में यह मंदिर सर्वश्रेष्ठ है, कहा जाता है, कि सम्राट अकबर वृन्दावन आए तो वे इस पुण्य भूमि को देख कर बहुत प्रभावित हुए और उनकी अनुमति से यहाँ गोविन्ददेव आदि कई मंदिरों का निर्माण कराया गया, कहते हैं इस कार्य में राजकीय कोष से

भी कुछ सहायता दी गई । गोविन्ददेव मंदिर का निर्माण कछवाहा नरेश मानसिंह ने अपने गुरु रूप और सनातन के आदेश से करवाया औरङ्गजेब ने इस विशाल मंदिर की ऊपरी बुर्जे तुड़वा दीं, बाद में ऊपरी भाग की आंशिक मरम्मत कराई गई।

३. **मदनमोहन मन्दिर**—यह शिखराकार मंदिर वृन्दावन में कालीदह घाट के पास है इसकी भी निर्माण शैली बहुत सुन्दर है, शिखर के ऊपर का आमलक अब तक सुरक्षित है।

४. **गोपीनाथ मन्दिर**—मदनमोहन के मंदिर से इसकी बनावट बहुत मिलती-जुलती है।

५. **राधावल्लभ मन्दिर**—यह मंदिर दिल्ली के सुन्दरदास कायस्थ द्वारा निर्मित हुआ, कुछ लोग सुन्दरदास को देववन-निवासी मानते हैं।

६. **जुगलकिशोर मन्दिर**—यह केशीघाट के पास है, और अन्य प्राचीन मंदिरों की अपेक्षा अच्छी दशा में है, इसका भी शीर्ष (आमलक) सुरक्षित है, इस मन्दिर का निर्माण १६२७ ई० में हुआ।

७. **हरदेव मन्दिर**—यह मदिर कद्वाहा राजा मानसिंह के द्वारा मथुरा से १४ मील पश्चिम गोवर्धन नगर में बनवाया गया था। सोलहवीं शताब्दी के स्थापत्य का यह एक अच्छा नमूना है।

सती बुर्ज तथा उक्त मदिर लाल पत्थर के बने हुए हैं। इनकी रचना शैली हिन्दू और मुगल स्थापत्य के सामंजस्य का

सुन्दर उदाहरण है, महावन, कामवन आदि कतिपय अन्य स्थानों में भी गुप्त तथा मध्यकालीन मंदिरों के कुछ खंडित अंश मिलते हैं। महावन में "चौरासी खंभा" वाला मंदिर उल्लेखनीय है, जिसमें कलापूर्ण स्तंभ देखे जा सकते हैं।

ब्रज की उपर्युक्त इमारतों मे गोविन्द देव मंदिर स्थापत्य की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। मथुरा में जन्मस्थान पर ओरछा के राजा वीरसिंहदेव द्वारा बनवाया हुआ केशवराय का मदिर इसमे मिलता-जुलता रहा होगा। गोविन्ददेव मदिर की रचना-शैली का संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जाता हैं—

यह मदिर १२ फुट ऊँची कुर्सी पर खड़ा है, इसकी वर्तमान लम्बाई २०० फुट और चौड़ाई १२० फुट है, मंदिर लाल चित्तीदार पत्थर का बना है, जो ब्रज का मुख्य पत्थर है, इसका प्रवेश-द्वार पूर्व की ओर है, बाहरी जगमोहन की लम्बाई ४० फुट है, जगमोहन के बाद रङ्ग-मण्डप है, जो ४० फुट लम्बा और १५ फुट चौड़ा है, इसके पीछे गर्भगृह है, जहाँ इस समय राधाकृष्ण की लघु प्रतिमाएँ विराजमान है। प्राचीन गर्भगृह इसके पीछे था। इस समय पूर्वी प्रवेश-द्वार से लेकर गर्भगृह तक की लम्बाई ११७ फुट है, उत्तर से दक्षिण मंडप की कुल चौड़ाई १०५ फुट है, जब प्राचीन गर्भगृह रहा होगा तब पूर्व-पश्चिम वाली भुजा लगभग १७५ फुट लम्बी रही होगी।

गोविन्ददेव मंदिर का बाहरी रूप उत्तर भारत के मध्यकालीन कुछ मंदिरों से मिलता-जुलता है, ग्वालियर किले में में सास-बहू मंदिर इसी ढङ्ग का है, परन्तु खुजुराहो के मंदिर तथा उड़ीसा में भुवनेश्वर, कोंड़ार्क आदि स्थानों के मदिर इससे

भिन्न हैं, इन मंदिरों में भीतर तथा बाहर विविध मूर्तियों का चित्रण बहुलता से मिलता है, परन्तु गोविन्द देव तथा वृन्दावन के अन्य मुगलकालीन मंदिरों में ऐसा नहीं है, कमल, मङ्गल-घट, कीर्तिमुख आदि अलंकरण तो वृन्दावन के मन्दिरों में मिलते हैं। परन्तु उनमें देव या मानव-प्रतिमाओं का प्रायः अभाव है इसका प्रधान कारण विदेशी शासन का प्रभाव कहा जा सकता है। मुगलकाल तथा उससे पहले की इमारतों में स्थापत्य की जो विशेषताएँ थीं उनका प्रभाव तत्कालीन हिन्दू मन्दिरो पर पड़ना स्वाभाविक था, विशेषकर उन स्थानों के मन्दिरों पर जो विदेशी शासन के अन्तर्गत थे।

गोविन्ददेव के मन्दिर में गवाक्षों तथा मेहराबों का कटाव दर्शनीय है। पत्थर के प्रत्येक टुकड़े पर बारीक कारीगरी देखने को मिलती है, मंदिर की छत बहुत ऊँची है; वह कमानीदार पत्थरों से बनाई गई है, नुकीली डाटों से सुसज्जित उसका गुंबज अत्यन्त कलापूर्ण है, गुंबज की गोलाई और सुघरता देखते ही बनती है, इस प्रकार के गुंबज मुगलकालीन हिन्दू इमारतों में बहुत कम मिलते हैं। मन्दिर के छोटे-बड़े सभी अवयव सतुलित है, कहीं भी भोंडापन नहीं दिखाई देता। मन्दिर की दीवालें १० फुट मोटी हैं। जोड़दार खम्भे यथास्थान खड़े हैं, यह विशाल और दृढ़ मन्दिर मुगलकालीन भारतीय कारीगरों की दक्षता का एक जीता-जागता प्रमाण है।

सौभाग्य से इस मन्दिर में चार नागरी-लेख सुरक्षित हैं, जिनसे इसके निर्माण-काल के अतिरिक्त उन अधिकारियों तथा कारीगरों के नामों का भी पता चलता है जिन्होंने इसे बनाया,

अधिकांश कारीगर तत्कालीन आमेर राज्य के ही प्रतीत होते हैं। एक लेख अकबर के ३४ वे राज्य वर्ष १५९० ई० का है, जो इस प्रकार है।

सम्वत् ३४ श्री शकबन्ध अकबर शाह राज श्री कूर्मकुल श्री पृथ्वी राजाधिराज वंश श्री महाराज श्री भगवंतदास सुत श्री महाराजाधिराज श्री मानसिंह देव श्री वृन्दावन जोगपीठ स्थान मन्दिर कराजो श्री गोविन्ददेव को। काम उपरि श्री कल्याणदास आज्ञाकारि माणिकचन्द चोपाडु शिल्पकारि गोविन्ददास बलि करिगरु: [द] गोरषदास वीभवलू।"

(अर्थात् सम्राट अकबर के ३४ वें राज्य वर्ष में कच्छप (कछवाहा) वशी श्री पृथ्वीराज के वंश में उत्पन्न महाराजाधिराज भगवानदास के पुत्र महाराजाधिराज मानसिंहदेव ने श्री वृन्दावन-योगपीठ स्थान मे श्री गोविन्ददेव के मंदिर का निर्माण कराया, मंदिर-निरीक्षण में मुख्य कार्याधिकारी श्री कल्याणदास, सहायक कर्मचारी माणिकचन्द, शिल्पी गोविन्ददास तथा कारीगर गोरखदास थे।

दूसरा लेख नागरी लिपि तथा संस्कृत भाषा में है। यह पाँच श्लोकों में है, श्लोकों की रसमयी भाषा देखने से ज्ञात होता है कि उनकी रचना संस्कृत के किसी विद्वान् पंडित ने की, सम्भव है कि स्वयं रूप या सनातन गोस्वामी ने उन्हें रचा हो, दुर्भाग्य से लेख खंडित अवस्था में है, परन्तु उसमें श्री गोविन्ददेव का नाम तथा अकबर के राज्यकाल में मन्दिर के निर्माणकर्ता मानसिंह का नाम स्पष्ट है और मानसिंह की कीर्ति का वर्णन है।

मन्दिर का तीसरा शिलालेख पहले लेख की प्रतिलिपि मात्र है चौथा लेख मन्दिर के पश्चिमोत्तर कोने पर बनी हुई छतरी के एक खम्भे पर उत्कीर्ण है और इस प्रकार है—

"संवत् १६६३, बरसे कार्तिक बदी ५ शुभ दिने हजरत श्री श्री श्री साहेजहाँ राज्ये राणा श्री अमरसिंह जी को बेटो राजा श्री भीमजी री राणी श्री रंभावती ने चौषडी सौराइ छे।"

इस लेख का राजा भीम मेवाड़ के राणा अमरसिंह का पुत्र था, उसकी रानी रंभावती द्वारा १६३६ ई० में गोविन्ददेव मन्दिर की बगल चौखडी (छतरी) का निर्माण कराया गया।

मानसिंह द्वारा निर्मित मंदिरों में श्री रूप गोस्वामी ने ने गोविन्द देव जी की जिस बड़ी प्रतिमा की प्रतिष्ठापना की वह इस समय जयपुर में विद्यमान है। इस प्रतिमा को औरंगजेब के समय में वृन्दावन से जयपुर पहुँचाया गया। क्योंकि उस समय इसके तोड़े जाने का भय उपस्थित हो गया था। वृन्दावन से मदनमोहन, गोपीनाथ आदि प्रतिमाओं को तथा ब्रज के अन्य कई स्थानों से देव-प्रतिमाओं को औरंगजेब के समय में ब्रज से बाहर ले जाकर सुरक्षित स्थानों में पहुँचाया गया।

औरंगजेब के समय ब्रज की स्थापत्य कला को निस्सन्देह बड़ी क्षति पहुँची। सौभाग्यसे उसने अपने पूर्ववर्ती शासकों द्वारा बनवाई हुई मुस्लिम-इमारतों को नष्ट नहीं किया। अकबर जहाँगीर तथा शाहजहाँ के समय में ब्रज के दूसरे मुख्य नगर आगरा में तथा वहाँ से २४ मील दूर फतहपुर सीकरी में जिन

प्रसिद्ध आलीशान इमारतों का निर्माण हुआ वे आज भी सुरक्षित हैं।

अकबर (१५५६, १६०५ ई०) को इमारतों का बड़ा शौक था। उसने आगरा का प्रसिद्ध किला बनवाया और नई राजधानी फतहपुर सीकरी में अनेक महलों आदि का निर्माण कराया, जो अपनी कला के लिए अमर हैं, अकबर ने भारतीय स्थापत्य को ऊँचा स्थान दिया। साथ ही उसने ईरान तथा अन्य देशों की उन शैलियों को भी ग्रहण किया, जिनमें उसने कोई विशेषता समझी। इस प्रकार देशी एवं विदेशी स्थापत्य का अच्छा समन्वय अकबरकालीन इमारतों में मिलता है।

अकबर द्वारा निर्मित इमारतें प्रायः लाल पत्थर की बनी हैं, जो आगरा और फतहपुर सीकरी में आसानी से मिलती है। लाल पत्थर के साथ उसने कहीं-कहीं सफेद संगमरमर का भी इस्तेमाल कराया है। अकबरकालीन इमारतों के अधिकांश गुंबज लोदी इमारतों की तरह भीतर खोखले मिलते है। खम्भों में कई पहलू हैं तथा उन पर के शीर्ष ब्रैकटनुमा होते हैं। इमारतों के अलंकरणों में गहरी नक्काशी और पारदर्शी गवाक्ष उल्लेखनीय है। भीतरी दीवालें और छतें सुनहले तथा दूसरे रंगों से रंगी हुई मिलती हैं।

जहाँगीर के समय (१६०५–२७ ई०) में भी कई इमारतें बनीं, जिनमें आगरा के पास अकबर का तिमंजला मकबरा तथा एतमादुद्दौला का मकबरा विशेष उल्लेखनीय है। इस काल में संगमरमर का प्रयोग बढ़ा और भड़कीले रंगों तथा पच्चीकारी को भी महत्व दिया गया। अब स्थापत्य के भारतीय उप-

करणों के स्थान पर ईरानी सजावट की चीजों का बाहुल्य मिलने लगता है। जहांगीर ने स्थापत्य से अधिक चित्रकला की ओर ध्यान दिया। उसके समय में शबीह चित्रकारी की बड़ी उन्नति हुई।

शाहजहाँ का शासनकाल १६२७-५८ ई०) तक इमारतों के निर्माण के लिए सब से अधिक महत्वपूर्ण है। इसी समय संसार-प्रसिद्ध ताजमहल का निर्माण आगरे में हुआ। ताजमहल के अतिरिक्त शाहजहाँ ने अन्य कितनी ही इमारतें आगरा, दिल्ली, अजमेर, लाहौर, श्रीनगर आदि में बनवाईं, जो वास्तु-काल की विख्यात कृतियाँ है। इन कृतियों में जैसा सौदर्य और निखार मिलता है। वैसा पहले की इमारतों मे दुर्लभ है, अकबरकालीन इमारतों की विशालता और दृढ़ता की जगह अब कोमलता और सुन्दरता ने ग्रहण की। लाल पत्थर का स्थान अब रंग-बिरंगे संगमरमर ने ले लिया, पहले की सादी मेहराब के स्थान पर शाहजहाँ ने नौ कटाव वाली मेहराब को चालू किया। उसके समय की गुम्बज, जाली के कटाव तथा रंगों में ईरानी कला का प्रभाव अधिक मिलता है। खम्भों पर सपत्र घट मिलते हैं और कही-कहीं दो-दो खम्भे (स्तंभयुग्म) का एक साथ प्रयोग मिलता है। संगमरमर पर अनेक रंगीन पत्थरों का जुड़ाव तथा विभिन्न पत्रावलियों का उकेरना भी इस काल की विशेषता थी।

शाहजहाँ के बाद औरंगजेब (१६५८-१७०७) तथा उसके उत्तराधिकारियों के समय में स्थापत्य और अन्य ललित कलाओं का ह्रास हुआ। उनके शासन-काल में आगरा तथा उत्तर प्रदेश के अन्य स्थानों में पहले जैसी उल्लेखनीय इमारतों का निर्माण

नहीं हुआ, औरंगजेब के समय में मथुरा, काशी आदि स्थानों में हिन्दू मन्दिरों को तोड़ कर उनकी जगह मस्जिदें बनाई गई।

नीचे आगरा की मुख्य इमारतों का विवरण दिया जाता है।

आगरा किला—इस किले का निर्माण अकबर के द्वारा कराया गया। यह आकृति में त्रिभुजाकार है, जिसका ऊपरी शीर्ष पश्चिम में 'दिल्ली दरवाजा' है। किले की दीवालें लगभग ७० फुट ऊँची है। दीवालों के चारों ओर खाई है। दिल्ली दरवाजा किले का प्रधान दरवाजा है, जिस पर हिजरी १०१४ (१६०५ ई०) का एक लेख है। इस लेख में अकबर खान देश पर चढ़ाई का और वहाँ से आगरा वापस आने का उल्लेख है। दूसरा द्वार 'अमरसिंह दरवाजा' कहलाता है। किले के भीतर मोती मस्जिद, मीना बाजार, दीवाने आम, दीवाने खास, नगीना मस्जिद, मच्छी भवन, शीश महल, जहाँगीरी महल, शाहजहाँ का खास महल आदि हैं, इनमें से कई इमारतें जहांगीर और शाहजहाँ के समय में बनीं, जैसा कि उन इमारतों के नामों तथा उनकी कारीगरी से पता चलता है।

ताजमहल—सम्राट् शाहजहाँ की बेगम मुमताज महल का यह प्रसिद्ध स्मारक आगरा किला के लगभग एक मील की दूरी पर है। इसका निर्माण १६३१ और १६५३ ई० के बीच में हुआ और इसमें देशी-विदेशी कुशल कारीगर लगाए गए। हाल में उपलब्ध एक फारसी लेख से पता चला है कि ताजमहल का नक्शा लाहौर के उस्ताद अहमद के द्वारा तैयार किया गया था। और गुंबज का निर्माण तुर्की के इस्माइलखां द्वारा हुआ।

अभिलेखों को शीराज के अमानतखां ने उकेरा तथा सारी इमारत की बनावट मकरमत खां और मीर अब्दुल करीम के निरीक्षण में पूरी हुई।

ताजमहल की गणना संसार के प्रसिद्ध महान् आश्चर्यों में होती है। यमुना के सुरम्य तट एवं चारों ओर हरे-भरे उद्यान से इस स्मारक का सौन्दर्य बहुत बढ़ गया है।

एतमादुद्दौला का मकबरा—यह इमारत यमुना-पार अलीगढ़ जाने वाली सड़क पर स्थित है, यह १५० वर्ग फुट की ऊँची एक चौकी पर बनी है, इमारत ६९ फुट ऊँची है और आयताकार है, इसमें सफेद सङ्गमरमर की जाली का काम बड़े आकर्षक ढङ्ग का है।

चीनी का रोजा और मोती बाग—ये एतमादुद्दौला के समीप ही हैं, यहीं एक मस्जिद भी है, जो शाहजहां द्वारा बनवाई बताई जाती है।

काला गुंबज—यह मकबरा अलीगढ़-सड़क पर चीनी का रौजा और बाग वज़ीरखाँ के बीच में स्थित है।

जामा मस्जिद—इस मस्जिद का निर्माण शाहजहाँ के राज्यकाल में १६४४ और१६४९ ई० के बीच में हुआ,यह विशाल मस्जिद लाल पत्थर की बनी हुई है, इसकी लम्बाई १३० फुट और चौड़ाई १०० फुट है, आगरा शहर की यह प्रमुख मस्जिद मानी जाती है।

उक्त इमारतों के अतिरिक्त आगरा में महताब बाग, जोहरा बाग, हुमायूँ की मस्जिद, पुराना दिल्ली दरवाजा, ईदगाह, फीरोज़खां का मकबरा आदि अन्य कितने ही स्मारक हैं।

फतहपुर सीकरी—आगरा से २४ मील पश्चिम फतहपुर सीकरी तक मोटर या रेल द्वारा पहुँचा जाता है, सीकरी को एक सुन्दर नगर बनाने का श्रेय अकबर का है। यह नगर आगरा, दिल्ली आदि की तरह अधिक समय तक राजधानी के रूप में नहीं रह सका, तो भी जो स्मारक यहाँ बचे है उनसे पता चलता है कि मुगल सम्राट ने इसे सजाने में कोई कोर-कसर बाकी नहीं रखी, मुख्य इमारतें ये है--

जामा मस्जिद—भारत में यह मस्जिद अपने ढङ्ग की अनोखी है। इसका अलंकृत पूजा-गृह, विशाल प्रांगण तथा प्रवेश-द्वार वास्तुकला की सुन्दर कृतियाँ हैं।

शेख सलीम चिश्ती की दरगाह—जामा मस्जिद के बड़े आँगन में अकबर के धर्मगुरु शेख चिश्ती की कब्र है, यह स्वच्छ संगमरमर की बनी है, इसके विभिन्न भागों की निर्माण-कला उत्कृष्ट कोटि की है, इसमें विभिन्न सुन्दर अलकरणों का प्रयोग किया गया है।

जोधाबाई का महल—यह महल पश्चिमी भारत के मंदिरों की शैली का बना हुआ है, सम्भवतः इसके निर्माता गुजरात के हिन्दू कलाकार थे।

बुलन्द दरवाजा—यह दरवाजा भारत के अत्यन्त विशाल दरवाजों में से एक है, इसकी ऊँचाई १ ४३ फुट है।

इनके अतिरिक्त दीवाने खास, तुर्की सुलताना का महल, बीरबल का मकान आदि अन्य महत्वपूर्ण इमारतें फतहपुर सीकरी में हैं, इन्हें देखने से पता चलता है कि इनमें स्थायित्व, सौन्दर्य तथा सतुलन का बहुत अधिक ध्यान रक्खा गया है। भारतीय तथा ईरानी कला का अच्छा समन्वय इन इमारतों में देखने को मिलता है।

औरङ्गजेब के समय में मथुरा में दो उल्लेखनीय मस्जिदों का निर्माण हुआ एक जन्मस्थान पर केशवराय मदिर के भग्नावशेषों पर लाल मस्जिद का और दूसरी चौक बाजार में अब्दुन्नबी की मस्जिद का, पहली का निर्माण १६७०–७१ ई० में हुआ और दूसरी का १६६१–६२ में।

जाटों के शासन-काल में ब्रज में अनेक इमारतें बनीं, जाटों ने प्रमुख स्थानों पर मजबूत किले बनाने की ओर विशेष ध्यान दिया। थूण, भरतपुर, कुम्हेर, बयाना, डीग, बल्लभगढ़, आदि स्थानों मे दृढ़ किलों का निर्माण किया गया। इनमें से कई दुर्ग दुर्भेद्य और अजेय थे। शत्रु-सेना को परास्त करने में जाटों को इन दुर्गों से बड़ी सहायता मिली। डीग के महल तथा गोवर्द्धन की छतरियाँ जाट शिल्पकला की अमर कृतियाँ हैं। महलों में पत्थरों की बारीक नक्काशी और जाली का काम देख कर दङ्ग रह जाना पड़ता हैं। मुगल तथा भारतीय, दोनों प्रकार की शैलियाँ जाट-स्थापत्य में मिलती हैं। बरसाना, भरतपुर. वृन्दावन और कामवन की भी कई इमारतें इसी शैली की हैं, गोवर्द्धन में मानसी-गङ्गा के पास शासक रणधीर सिंह तथा बलदेवसिह की अत्यन्त कलापूर्ण छतरियाँ हैं, इनमें पत्थर की बारीक कटाई के साथ दीवालों पर सुन्दर चित्रकारी भी मिलती है, जो तत्कालीन राजस्थानी चित्रकला का सुन्दर उदाहरण है।

बयाना में "ऊषा मन्दिर" भी एक दर्शनीय इमारत है, यहाँ के प्राचीन मन्दिर को तोड़कर खिलजी वंश के कुतुबुद्दीन मुबारक (१३१६,२० ई०) ने एक मस्जिद बनवा दी थी। जाट शासन-काल में उसे फिर मन्दिर के रूप में परिणित किया गया।

अध्याय २

मूर्तिकला

भारतीय विचार-धारा में ईश्वर के सगुण रूप को प्रधानता दी गई है। भगवान् कृष्ण की लीलाभूमि ब्रज में सगुण उपासना को महत्व प्राप्त होना स्वाभाविक था। यहाँ के साहित्य और शिल्प-कला में श्रीकृष्ण के विविध चरितों का आलेखन दीर्घ काल तक होता रहा। साथ ही हिन्दू धर्म के अन्य देवी-देवताओं को भी मूर्त रूप प्रदान किया गया। ईसवी पूर्व दूसरी शती से लेकर प्रायः बारहवीं शती तक मथुरा में हिन्दू देवों की प्रतिमाएँ बड़ी संख्या में बनाई जाती रहीं। गुप्तवंशी शासक भागवत धर्म के अनुयायी थे, इस धर्म ने सहिष्णुता और समन्वय की जो भावना फैलाई उसका प्रभाव तत्कालीन शिल्पकला पर भी स्पष्ट दिखाई पड़ता है। भागवत धर्म सम्बन्धी मूर्तियों के साथ-साथ शैव मूर्तियां भी मथुरा के अनेक स्थानों से प्राप्त हुई हैं। मध्यकाल से ब्रज में पौराणिक धर्म की प्रधानता होने से यहां की मूर्तिकला में उसका प्रभाव परिलक्षित होता है।

मथुरा में कंकाली टीला तथा ब्रज के कई अन्य स्थानों से जैन धर्म सम्बन्धी विशाल शिल्प सामग्री भी प्राप्त हुई है। इसी प्रकार शुंग-काल के आरम्भ से लेकर गुप्तकाल के अन्त तक के जो बौद्ध अवशेष यहाँ मिले हैं उनसे बौद्ध धर्म के क्रमिक विकास का पता चलता है। ब्रज के विविध धार्मिक सम्प्रदायों में थोड़ा-बहुत मतभेद स्वाभाविक था। पर वे आपस में मिलकर रहते थे। हम देखते हैं कि ब्रज के सहिष्णुतापूर्ण वातावरण में भारत के सभी धर्मों को साथ-साथ विकसित होने का अवसर शताब्दियों तक मिला। यहाँ की समन्वयात्मक संस्कृति ने इन धर्मों के पारस्परिक भेदभावों को दूर करने में उल्लेखनीय योग दिया।

भारत का एक प्रमुख धार्मिक तथा कला-केन्द्र होने के नाते मथुरा को बड़ी ख्याति प्राप्त हुई। ईरान, यूनान, और मध्य एशिया के साथ मथुरा का सम्बन्ध बहुत समय तक रहा। तक्षशिला की तरह मथुरा नगर भी विभिन्न संस्कृतियों के पारस्परिक मिलन का एक बड़ा केन्द्र हो गया। इसके फल-स्वरूप विदेशी कला की अनेक विशेषताओं को कलाकारों ने ग्रहण किया और उन्हें देशी तत्वों के साथ मिलाने में कुशलता का परिचय दिया। तत्कालीन एशिया तथा यूरोप की संस्कृति के अनेक उपादान मथुरा कला के साथ घुल-मिल गए। कुषाण-कालीन मथुरा की मूर्ति कला में हमें यह बात प्रत्यक्ष देखने को मिलती है।

प्राचीन ब्रज में मंदिरों तथा मूर्तियों के निर्माण में प्रायः लाल बलुए पत्थर का प्रयोग होता था। यह पत्थर ब्रज में

तांतपुर, फतहपुर सीकरी, रूपवास, बयाना आदि स्थानों में मिलता है और मूर्ति गढ़ने में मुलायम होता है। इस पत्थर पर प्रायः सफेद चित्तियाँ रहती हैं कुछ खानों से निकला हुआ पत्थर सफेद दागों से रहित, बहुत बढ़िया किस्म का होता है।

हिन्दू मूर्तियाँ

हिन्दू मूर्तिकला के विकास की दृष्टि से मथुरा का स्थान बहुत ऊँचा है। यहीं सर्वप्रथम अनेक देवों की प्रतिमाओं का निर्माण हुआ। पौराणिक देवी-देवताओं के मूर्ति-विज्ञान के अध्ययन के लिए यहाँ की कला में महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध है। मथुरा नगर के अतिरिक्त महावन (प्राचीन गोकुल), सतोहा नगला, बयाना आदि स्थानों से प्राचीन हिन्दू मूर्तियाँ मिली हैं। कामवन मध्यकालमें हिन्दू मूर्तिकला का एक बड़ा केन्द्र हो गया था। यहाँ अनेक बड़े मंदिर थे, जिनके ध्वंशावशेष प्राप्त हुए हैं। जो कलापूर्ण मूर्तियाँ कामवन में मिली है उनमें शिव, हरगौरी, सूर्य, महिषमर्दिनी, दुर्गा, विराट् रूप विष्णु शेषशायी आदि की प्रतिमाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। इनका निर्माण काल ईसवी सातवीं से लेकर दसवीं शती तक है।

ब्रह्मा—मथुरा के पुरातत्त्व संग्रहालय में ब्रह्मा की कुषाणकालीन दो मूर्तियाँ हैं। इनमें सब से दर्शनीय तथा अद्-भुत मूर्ति ३८२ संख्यक है। इसमें ब्रह्मा के तीन मुख एक सीध में दिखाए गए हैं और चौथा बीच वाले सिर के पीछे है। कुषाणकालीन बौद्ध मूर्तियों की तरह इसमें भी सादा छाया-मंडल तथा अभय मुद्रा प्रदर्शित है। गुप्त तथा मध्यकाल की भी ब्रह्मा की अनेक मूर्तियाँ मथुरा से मिली हैं। इनमें महावन से प्राप्त डी० २२ संख्यक प्रतिमा उल्लेखनीय है, जिसमें ब्रह्मा अपनी

पत्नी सावित्री के साथ बैठे दिखाए गए हैं। गुप्तकालीन एक प्रतिमा (सं० ४६३) में ब्रह्मा इन्द्र के साथ स्वामि कार्तिक का अभिषेक करते हुए प्रदर्शित है। बरसाना से ब्रह्मा की एक मुगलकालीन मूर्ति भी मिली है।

शिव—शिव की विविध मूर्तियाँ मथुरा कला में मिली हैं। कुषाण शासकों में विम कैडफाइसिस, वासुदेव, कनिष्क तृतीय आदि के सिक्कों पर नन्दी सहित शिव की एक या कई मुख वाली मूर्तियाँ मिलती हैं। कुषाणकालीन शिवलिंग की एक मूर्ति मथुरा से मिली है, जिसकी पूजा करते हुए शक लोग दिखाए गए हैं (सं० २३६१) मथुरा में मुखलिंग रूप में भी शिव की उपासना प्रचलित थी। कुषाण तथा गुप्तकाल के कई सुन्दर शिवलिंग यहाँ प्राप्त हुए हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण यह है जिसमें खड़े हुए चतुर्भुजी शिव को दिखाया गया है। २३१२ तथा २५२८ संख्यक अवशेष एकमुखी लिंग तथा ५१६ संख्यक पचमुखी शिवलिंग के अच्छे उदाहरण हैं। उत्तर गुप्त-कालीन एक मूर्ति सं० २०८४ में नन्दी के सहारे खड़े हुए दम्पती भाव में शिव पार्वती पत्थर के सामने तथा पृष्ठ भाग पर बड़ी सुन्दरता के साथ आलेखित हैं शिव पार्वती की एक दूसरी मूर्ति सं० २५७७ में उन्हें कैलाश पर्वत पर बैठे हुए दिखाया गया है। नीचे रावण पहाड़ को उठा रहा है, जिससे पर्वत का एक कोना ऊपर उठ गया है। पार्वती की भयभीत मुद्रा तथा शिव का क्रुद्ध भाव दर्शनीय है। गुप्तकाल की अर्द्ध नारीश्वर मूर्तियाँ भी मिली हैं सं० ३६२, ७२२, २४९५, जिनमें आधा अंग शिव का और आधा पार्वती का अत्यन्त कलात्मक ढंग से दिखाया गया।

विष्णु— विष्णु की कुषाणकालीन कई मूर्तियाँ मथुरा से ऐसी मिली है जैसी कि भारत में अन्यत्र प्राप्त नहीं होती, ६३३ संख्यक चतुर्भुजी विष्णु मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है, इसकी निर्माण शैली प्रारम्भिक कुषाणकालीन बोधिसत्व प्रतिमाओं से बहुत मिलती है, विष्णु का एक हाथ अभय मुद्रा में है और दूसरे से वे अमृतघट लिए हैं, शेष दो हाथों में गदा तथा चक्र है, यहां विष्णु के साथ केवल दो आयुध हैं। बाद में शङ्ख तथा पद्म भी मिलने लगते हैं। २४८७ संख्यक मूर्ति में भी भगवान् विष्णु को बोधिसत्व मैत्रेय के समान अङ्कित किया गया है। विष्णु की कुषाणकालीन दो अष्टभुजी मूर्तियाँ भी मथुरा कला में मिली हैं, सं० १०१० तथा ३५२०, जो मूर्ति विज्ञान की दृष्टि से बड़े महत्व की है, एक अन्य लघु शिलापट्टा सं० २५२० पर चतुर्भुजी विष्णु को अर्द्धनारीश्वर शिव, राजलक्ष्मी तथा कुबेर के साथ दिखाया गया है।

गुप्तकाल की एक मूर्ति (ई० ६) में चतुर्भुजी विष्णु को ध्यान मुद्रा में दिखाया गया है; उनके सिर पर अलंकृत किरीट मुकुट है, वे कुण्डल, मुक्तहार भुजाबन्ध तथा बैजयंती भी धारण किए हैं, उनके लहरदार वस्त्र बड़े रोचक ढङ्ग से प्रदर्शित किए गए हैं यह मूर्ति गुप्तकालीन कला का उत्कृष्ट उदाहरण है, मूर्ति के ऊपर एक छत्र है, जो पूर्ण विकसित कमलों तथा पत्र रचना से अलंकृत है। २५२५ सख्यक विष्णु मूर्ति गुप्त कला का एक उत्तम उदारण है, यह महाविष्णु नृसिंह वराह विष्णु की मूर्ति है, बीच में भगवान् विष्णु का मुख है तथा अगल-बगल नृसिंह और वराह अवतारों के मुख हैं २८८४ संख्यक मूर्ति भी ऐसी ही है, पर उसमें महाविष्णु के अङ्कन के

साथ उनके विराट रूप के भी दर्शन हैं, मथुरा कला में मिट्टी की भी कई सुन्दर विष्णु मूर्तियाँ प्राप्त हुई है।

कृष्ण बलराम-भगवान् कृष्ण की लीला भूमि ब्रज में उनकी प्राचीन मूर्तियाँ बहुत कम प्राप्त हुई हैं, यह सचमुच आश्चर्यजनक है, उनके जीवन से सम्बन्ध रखने वाली जो सबसे प्राचीन मूर्ति मथुरा में मिली हैं वह ई० दूसरी शताब्दी की है, स० १३४४ इस शिलापट्ट पर नवजात शिशु कृष्ण को एक सूप में रखकर वसुदेव गोकुल जाने के लिए यमुना पार करते हुए दिखाए गए हैं। यमुना नदी का बोध धारीदार लकीरों तथा जल जन्तुओं के द्वारा बड़ी सुन्दरता के साथ कराया गया है। ई० ६०० के लगभग की कृष्ण की एक अन्य मूर्ति प्राप्त हुई है, डी० ४७,जिसमें वे अपने हाथ पर गोवर्द्धन उठाए हुए चित्रित हैं, पर्वत के नीचे गाय तथा ग्वाल बाल खड़े हैं, कुछ वर्ष पूर्व मथुरा नगर में यमुना तट पर स्थित कंस किला से श्रीकृष्ण की एक गुप्तकालीन मूर्ति मिली है सं० ३३७४। इसमें उन्हें कालियनाग का दमन करते हुए दिखाया गया है, लखनऊ संग्रहालय में भी कालियदमन की एक प्रतिमा है, कृष्ण की मध्यकालीन कुछ मूर्तियाँ भी मिली हैं, पर वे प्रायः साधारण कोटि की हैं।

बलराम की प्राचीन मूर्तियाँ अपेक्षाकृत अधिक मिली हैं, मथुरा-कला में उनकी सबसे प्राचीन मूर्ति शुङ्ग काल की है। जिसमें वे हल तथा मूसल धारण किए दिखाए गए हैं, यह मूर्ति अब लखनऊ संग्रहालय में हैं, सं० जी० २१५ बलराम की कुषाण तथा गुप्तकालीन अनेक मूर्तियाँ मिली है, जिन पर वे

हल मूसल, वारुणीपात्र आदि लिए हुए अङ्कित हैं (द्रष्टव्य सं० सी० १५, ४३५ तथा सी० १६)

स्वामिकार्तिक—शिव के पुत्र स्वामिकार्तिक की भी अनेक मूर्तियां मथुरा में मिली है, इनमें उल्लेखनीय २६४६ तथा ३४७ सख्यक है, पहली पर ब्राह्मी अभिलेख है, जिससे पता चलता है कि वह ८६ ई० में बनायी गई थी । इसमें दायां हाथ अभय मुद्रा मे है तथा बाये मे लम्बा भाला है, दूसरी मूर्ति मे कार्तिकेय अपने वाहन मयूर पर चढ़े हुए अङ्कित किए गए है । स्वामिकार्तिक की एक बहुत सुन्दर गुप्तकालीन मृणमूर्ति (सं०७६४) है, इसमें वे शक्ति धारण किए हुए मयूर पर बैठे दिखाए गए हैं, उनके मुख मण्डल से तेज टपक रहा है, ४६६ संख्यक मूर्ति में शिव तथा ब्रह्मा के द्वारा देव सेनापति कार्तिकेय का अभिषेक दिखाया गया है । कार्तिकेय की कुषाणकालीन एक मूर्ति हाल में मथुरा नगर से कुछ दूर गोसना नामक गाँव से मिली है ।

गणेश—शिव के दूसरे पुत्र गणेश के कई रूप मथुरा कला में मिलते हैं, बाल गणपति तथा नृत्य करते हुए एकदत गणेश की कई गुप्तकालीन प्रतिमाएं मिली हैं, सं० ७५८ उनकी मध्यकालीन मूर्तियो में एक दशभुजी मूर्ति स० २५२ उल्लेखनीय है, इसमें आकर्षक मुद्रा में बाल गणेश मोदक लिए हुए नृत्य कर रहे है ।

इन्द्र—ब्रज में कुषाण तथा गुप्तकालीन इन्द्र मूर्तियाँ कई मिली हैं, मथुरा संग्रहालय की ३६२ संख्यक इन्द्र मूर्ति कला की अद्भुत कृति है । यह कुषाण काल के आरम्भ की है, इसमें हाथ

में वज्र धारण किए इन्द्र खड़े हैं, उनके दोनों कन्धों से नाग मूर्तियाँ निकल रही है, इन्द्र के सिर पर ऊँचा किरीट मुकुट है, अभयमुद्रा में खड़े हुए इन्द्र की एक दूसरी मूर्ति भी उल्लेखनीय है, इसमें उनका वाहन ऐरावत हाथी भी है, इन्द्र शैल गुफा में तपस्या करते बुद्ध के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए ऐरावत सहित आए हुए इन्द्र की कई मूर्तियाँ मथुरा कला में मिली हैं।

अग्नि—भारतीय कला में अग्नि की प्राचीन मूर्तियाँ बहुत कम प्राप्त होती हैं, मथुरा में अग्नि की जो प्रतिमाएँ मिली हैं उनमें मूर्ति सं० २८८० कुषाणकालीन है, दूसरी डी० २४ पूर्व मध्यकाल की है, दोनों में अग्निदेव के सिर के ऊपर से ज्वालाएँ निकल रही हैं। दूसरी मूर्तिमें उनका वाहन भेष 'मेढ़ा' भी बना है। कंकाली टीला से अग्नि की एक गुप्तकालीन मूर्ति मिली थी, जो अब लखनऊ संग्रहालय में है, स० जे० १२३।

नवग्रह—नवग्रहों की प्रतिमाएँ अनेक शिलापट्टों पर मिली है। राहू की एक अलग मूर्ति सं० २८३६ भी मिली है, जिसमें वे तर्पण करते दिखाए गए हैं।

सूर्य—नवग्रहों में सूर्य का स्थान सबसे अधिक महत्व का माना जाता है, मथुरा कला में इनकी दो प्रकार की मूर्तियाँ मिलती हैं, पहली भांति वाली प्रतिमाओं में वे शक राजाओं की वेशभूषा 'उदीच्य वेश' में अंकित मिलते हैं। सं० २६६ ऐसी मूर्ति है, सूर्य के दायें हाथ में कटार तथा बायें में कमल का गुच्छा है, वे दो घोड़ों के रथ पर बैठे है, बाद में क्रमशः घोड़ों

की संख्या चार तथा फिर सात हो जाती है, ऐसी अनेक मूर्तियाँ मथुरा से मिली हैं। सूर्य की एक मूर्ति सेलखड़ी पत्थर की भी बनी मिली है, सं० १२५६ इस पर वे सासानी राजाओं के पहनावे में दिखाए गए है। दूसरी भांति की मूर्तियों में बैठे हुए या खड़े सूर्य को अन्य देवों की भाँति दिखाया जाता है। इनमें वे दोनों हाथों में कमल ग्रहण किए रहते हैं। मध्यकालीन सूर्य मूर्तियों की संख्या बहुत बड़ी है।

कामदेव—कामदेव की अनेक कला पूर्ण पाषाण एवं मृण्मूर्तियाँ मथुरा से मिली है, २५५२ संख्यक मिट्टी का मूर्ति में धनुष तथा पंचबाण धारण किए हुए कामदेव का आकर्षक रूप मिलता है। इसमे शूर्पक मछुए तथा राजकुमारी कुमुद्वती की प्रेमकथा का चित्रण है, बुद्ध द्वारा मार विजय वाले दृश्यों में भी कामदेव की मूर्ति मिलती है, शुङ्गकालीन एक पाषाण मूर्ति, जिसमें कामदेव को पाँचबाण लिए हुए दिखाया गया है, एक उल्लेखनीय प्रतिमा है,इसमें उनकी वेशभूषा वैसी ही है जैसी कि सांची भारहुत आदि की शुङ्ग कालीन पुरुष प्रतिमाओं में मिलती है।

हनुमान—हनुमान की ६ फुट ७ इंच ऊँची मूर्ति डी० २७ मथुरा संग्रहालय में है, जो लगभग नवीं शताब्दी की है, मथुरा से प्राप्त हनुमान की एक दूसरी विशाल मूर्ति इंडियन म्यूजियम, कलकत्ता में है।

देवियों की मूर्तियाँ—देवों के साथ ही या अलग उनकी शक्ति रूपा देवियों की प्रतिमाओं का भी निर्माण मथुरा की मूर्तिकला में पाया जाता है। लक्ष्मी सं० २५२०, सरस्वती सं०

डी० ५७, पार्वती सं० १०४४ तथा ८७९ महिषमार्दिनी सं० ५४१ सिंहवाहिनी दुर्गा सं० १२८३ तथा १७८३, सप्तमातृका सं० १५०७, २६५९ की अनेक कलापूर्ण मूर्तियाँ मिली हैं। इनके अतिरिक्त मातृदेवी की मौर्य तथा शुङ्गकालीन मृण्मूर्तियाँ मिली हैं। सं० १५९२, २२२२, २२४१, २२४३ आदि, ये मूर्तियाँ प्रायः हाथ की बनी हुई हैं, सांचे द्वारा निर्मित नहीं, लक्ष्मी, सिंहवाहिनी, महिषमर्दिनी, वसुधारा आदि देवियों की मिट्टी की मूर्तियाँ भी मिली हैं।

जैन मूर्तियाँ

मथुरा में जैन मूर्तियों का निर्माण कुषाणकाल के पहले से होने लगा था, इस नगर के पश्चिम में कङ्काली टीला नामक स्थान जैन धर्म का बहुत बड़ा केन्द्र था। १८८९ से १८९१ तक इस टीले की खुदाई की गई, जिसमें लगभग १५०० कलावशेष प्राप्त हुए, ये सभी लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित हैं, ये ईसवी पूर्व प्रथम शती से लेकर लगभग ११०० ई० तक के हैं, ऐसी बड़ी संख्या में इतनी प्राचीन जैन मूर्तियाँ भारत में अन्यत्र कहीं नहीं मिलीं।

मथुरा कला में जैन मूर्तियों को तीन मुख्य भागों में बांटा जा सकता है। १ तीर्थंकर प्रतिमाएँ २ देवियों की मूर्तियां तथा ३ आयागपट्ट आदि कृतियाँ।

१ तीर्थंकर मूर्तियाँ–जैन देवता तीर्थंकर या "जिन" कहलाते हैं, तीर्थंकर संख्या में चौबीस हैं, मथुरा कला में

आदिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर आदि तीर्थंकारों की मूर्तियाँ मिली हैं, जो प्रायः पद्म मासन् में बैठी हैं। कुछ खड़ी हुई खड्गासन में भी मिली हैं। ऐसी भी कई प्रतिमाएँ मिली हैं। जिनमें चारों दिशाओं में से प्रत्येक ओर एक-एक तीर्थंकर मूर्ति बनी है। ऐसी प्रतिमाओं को "सर्वतोभद्रिका" कहते हैं, मथुरा संग्रहालय में बी०१, ६७, बी० ६८ तथा बी० ४ सख्यक सर्वतोभद्रिका प्रतिमाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

२. देवियों की मूर्तियाँ—जैन देवियों की भी मूर्तियाँ मिली हैं, जो अधिकतर गुप्तकाल तथा मध्यकाल की हैं। इनमें नेमिनाथ की यक्षिणी अंबिका डी० ७ तथा ऋषभनाथ की यक्षिणी चक्रेश्वरी डी० ६ की मूर्तियाँ दर्शनीय है।

३. अन्य कलाकृतियाँ—मथुरा में कई कलापूर्ण आयागपट्ट मिले हैं। आयागपट्ट प्रायः वर्गाकारा शिलापट्ट होते हैं, जो पूजा में प्रयुक्त होते थे। उनके ऊपर तीर्थंकर, स्तूप, स्वस्तिक, नंद्यावर्त आदि पूजनीय चिह्न उत्कीर्ण किए जाते थे। मथुरा संग्रहालय में एक सुन्दर आयागपट्ट सं० क्यू २ है, जिसे, उस पर लिखे हुए लेख के अनुसार, लवणशोभिका नामक वैश्या की लड़की वसु ने दान में दिया था। इस आयागपट्ट पर एक विशाल स्तूप का चित्र तथा वेदिकाओं सहित तोरण-द्वार बना हुआ है। लखनऊ संग्रहालय में मथुरा आयागपट्टों के कई सुन्दर उदाहरण सं० जे० २४८, २४९ आदि हैं। आयागपट्टों के अतिरिक्त अन्य विविध शिलापट्ट तथा वैदिकास्तम्भ भी मिले हैं, जिन पर जैन धर्म सम्बन्धी मूर्तियाँ तथा चिह्न

अङ्कित हैं। इन कलाकृतियों पर देवता, यक्ष यक्षी, पुष्पित लता वृक्ष, मीन, मकर, गज, सिह, वृषभ, मंगलघट, कीर्तिमुख आदि बड़े कलात्मक ढग से उत्कीर्ण मिलते हैं।

बौद्ध मूर्तियाँ

भारत में भगवान् बुद्ध का पूजन कुषाणकाल के कई शताब्दी पहले आरम्भ हो चुका था। पर वह उनके चिह्नों की पूजा तक ही सीमित था। बुद्ध की मूर्ति का निर्माण नहीं हुआ था। शुंगकाल के अन्त तक हम यही स्थिति पाते हैं। सांची, भारहुत, बोधगया, सारनाथ आदि स्थानों से उस समय तक की जितनी बौद्ध कलाकृतियाँ प्राप्त हुई हैं उन पर बोधि-वृक्ष, धर्मचक्र, स्तूप भिक्षापात्र आदि का ही पूजन दिखाया गया है, मूर्त रूप में भगवान् बुद्ध का पूजन कहीं नहीं। मथुरा से भी जो प्राचीन मूर्तियाँ मिली हैं उन पर इन चिह्नों का पूजन मिलता है। मथुरा में हिन्दुओं के बलराम आदि देवों तथा जैन तीर्थकर प्रतिमाओं का निर्माण प्रारम्भ हो चुका था। बौद्ध धर्मानुयायियों मे भी अपने देव को प्रतिमा के रूप में देखने की उमंग का उठना स्वाभाविक था। मथुरा के कुषाण शासक मूर्ति निर्माण के प्रेमी थे और उस समय यहाँ भक्ति-प्रधान महायान धर्म प्रबल हो उठा था। फलस्वरूप कुषाण-काल में मथुरा के शिल्पियों द्वारा भगवान् बुद्ध की मूर्ति का निर्माण हुआ। इधर गंधारप्रदेश में भी बौद्ध मूर्तियाँ बड़ी संख्या में बनाई जाने लगीं। मथुरा से प्राप्त बुद्ध और बोधि-सत्व की प्रारम्भिक प्रतिमाएँ प्रायः विशालकाय मिली हैं, जैसी कि यज्ञ मूर्तियाँ मिलती हैं। कला के विकास के साथ-

साथ मूर्तियाँ अधिक सुन्दर बनने लगी हैं। मथुरा में गुप्तकाल में निर्मित बुद्ध की कुछ प्रतिमाओं में बाह्य सौन्दर्य के साथ आध्यात्मिक गाम्भीर्य का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है।

बुद्ध तथा बोधिसत्व प्रतिमाएँ—ज्ञान या सम्बोधित प्राप्त होने के पहले बुद्ध की संज्ञा "बोधिसत्व" थी और उसके बाद "बुद्ध" हुई, इन दोनों की मूर्तियों में अन्तर यह है कि बोधिसत्व को मुकुट आदि विविध आभूषणों से अलकृत राज-वेश में दिखाया जाता है, पर बुद्ध को इनसे रहित केवल वस्त्र 'चीवर' धारण किए हुए, बुद्ध के सिर पर बालों का जटाजूट 'उष्णीष' रहता है, जो उनके बुद्धत्व या ज्ञानसपन्न होने का सूचक है, दोनों प्रकार की मूर्तियाँ मथुरा में या तो खड़ी मिलती है या पद्मासन में बैठी हुई, द्वितीय प्रकार की मूर्तियाँ कुषाणकाल में अधिक मिलती है। गुप्तकालीन मूर्तियाँ प्रायः खड़ी हुई मिलती है, मथुरा संग्रहालय की कुछ उत्कृष्ट प्रतिमाएँ स० ए० १, २, ए० ५, ए० ४० तथा २७९८ हैं।

मुद्राएँ—बोधिसत्व तथा बुद्ध प्रतिमाएँ हाथों के द्वारा अनेक भावों को व्यक्त करते पाई जाती है, उन भाव विशेषों को "मुद्रा" कहते है, मथुरा कला में निम्नलिखित चार मुद्राएँ मिलती हैं।

१ ध्यान मुद्रा—इसमें बोधिसत्व या बुद्ध पद्मासन में बैठे हुए तथा बाएँ हाथ के ऊपर दायाँ रखे हुए दिखाए जाते हैं।

२ अभय मुद्रा—इसमें वे दाएँ हाथ को उठा कर उसे

कन्धे की ओर मुड़ कर श्रोताओं या दर्शकों को अभय प्रदान करते हुए दिखाए जाते हैं।

३ भूमिस्पर्श मुद्रा—इसमें ध्यानावस्थित बुद्ध दाएँ हाथ से भूमि को छूते हुए प्रदर्शित किए जाते हैं, जब बोध गया में उनके तप को नष्ट करने का प्रयत्न कामदेव द्वारा किया गया तब उन्होंने इस बात की साक्षी देने के लिए कि उनके मन में कोई भी काम विकार नहीं, पृथिवी का स्पर्शकर उसका आह्वान किया था, जिसे उक्त मुद्रा द्वारा व्यक्त किया जाता है।

४ धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा—इसमें भगवान् बाएँ हाथ की अँगुलियों के ऊपर दाएँ हाथ की अँगुलियों को इस प्रकार रखते है मानो वे चक्र घुमा रहे हों, यह दृश्य सारनाथ में उनके द्वारा धर्म के सर्वप्रथम उपदेश को सूचित करता है, यहीं से उन्होंने ससार में एक नए धर्म का प्रवर्तन किया।

इनके अतिरिक्त एक "वरद मुद्रा" भी है। जो मथुरा में नहीं मिलती, इसमें भगवान् का दायां हाथ हथेली को इस प्रकार सामने किए नीचे लटकता है, मानों वे वरदान दे रहे हों।

जातक कथाएँ तथा बुद्ध के जीवन की घटनाएँ—

बुद्ध तथा बोधिसत्व की मूर्तियों के अतिरिक्त मथुरा कला में उनके पूर्व जन्मों की घटनाएँ भी अनेक शिला पट्टों आई० ४, ५८६, आई० १८, जे० ४ आदि पर चित्रित मिलती हैं, जिन्हें "जातक" कहते हैं, बौद्ध धर्म के अनुसार बुद्ध होने के पहले

भगवान् कई योनियों में विचरे थे। उन्हीं पूर्वजन्मों की कहानियाँ जातक कथाएँ है। गौतम बुद्ध के वर्तमान जीवन की मुख्य घटनाओं-जन्म, सम्बोधि, धर्मचक्र-प्रवर्तन, स्वर्गावतरण एव परिनिर्वाण-के भी चित्रण मथुरा-कला में मिलते है (सं० एच० १, एच ११ आदि)।

वेदिका-स्तंभों पर उत्कीर्ण प्रतिमाएँ

स्तूपों का वर्णन करते समय वेदिकास्तम्भों का उल्लेख किया जा चुका है। इन स्तम्भों पर विविध मनोरजक दृश्य मिलते हैं, विशेषकर आकर्षक मुद्राओं में खड़ी हुई सुन्दरियों के। वे मुक्ताग्रथित केशपाश, कर्ण कुण्डल, एकावली, गुच्छक, हार, केयूर, कटक, मेखला, नूपुर आदि आभूषण धारण किए दिखाई गई है। कही कोई युवती उद्यान मे फूल चुन रही है तो कोई कंदुक क्रीड़ा में लग्न है (जे० ६१) कोई अशोक वृक्ष को पैर से ताड़ित कर उसे पुष्पित कर रही है (२३२५), या निर्झर में स्नानकर रही है अथवा स्नानोपरान्त तन ढक रही है (जे०४)। किसी के हाथ मे वीणा (जे० ६२) और किसी के हाथ में वंशी (एफ० १८) है, तो कोई प्रमदा नृत्य में तल्लीन है (१५२) कोई सुन्दरी स्नानागार से निकलती हुई अपने बाल निचोड़ रही है और नीचे हंस पानी की बूँदों को मोती समझ कर अपनी चोंच खोले खड़ा है (१५०६) किसी स्तम्भ पर वेणी-प्रसाधान का दृश्य है (जे ५) किसी पर संगीतोत्सव का (४०५) और किसी पर मधुपान का (जे०६)इस प्रकार लोकजीवन के कितने ही दृश्य इन स्तम्भों पर चित्रत है। कुछ पर भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्मों से सम्बन्धित विभिन्न जातक कहानियाँ (जे० ४ का पृष्ठ भाग) और

कुछ पर महाभारत आदि के दृश्य (१५१) भी हैं। इनके अतिरिक्त अनेक प्रकार के पशु-पक्षी, लता-फूल आदि भी इन स्तम्भों पर उत्कीर्ण किए गए हैं। इन वेदिकास्तम्भों को शृङ्गार और सौन्दर्य के जीते-जागते रूप कहना चाहिए, जिन पर कलाकारों ने प्रकृति तथा मानव-जगत् की सौंदर्य-राशि उपस्थित कर दी है।

यक्ष, किन्नर, गन्धर्व आदि

मथुरा-कला में यक्ष, किन्नर, गंधर्व, सुपर्ण तथा अप्सराओं की अनेक मूर्तियाँ मिली है। ये सुख समृद्धि तथा विलास के प्रतिनिधि हैं। संगीत, नृत्य और सुरापान इनके प्रिय विषय हैं। इनमें यक्षों की प्रतिमाएँ मथुरा कला में सबसे अधिक मिली हैं। सबसे महत्वपूर्ण परखम गांव से प्राप्त तृतीय शती ई० पू० की विशालकाय यक्ष मूर्ति (सी० १) है। ऐसी एक दूसरी बड़ी मूर्ति मथुरा के बरौदा नामक गाँव से प्राप्त हुई है। वे मूर्तियाँ कोरकर बनाई गई है, जिससे उनका दर्शन चारों ओर से हो सके। कुषाणकाल में ऐसी ही मूर्तियों के समान विशालकाय बोधिसत्व प्रतिमाएँ निर्मित की गईं।

यक्षों में कुबेर तथा उनकी स्त्री हारीती की अनेक मूर्तियाँ मथुरा में प्राप्त हुई है। कुबेर यक्षों के अधिपति तथा धन के देवता है। बोद्ध, जैन तथा हिन्दू—इन तीनों धर्मो में उनका पूजन मिलता है। वे जीवन के आनन्दमय रूप के द्योतक हैं और इसी रूप में उनकी अधिकांश मूर्तियाँ मिली हैं। मथुरा-सग्रहालय में संख्या सी० २, सी० ५ तथा सी० ३१ कुबेर की उल्लेखनीय मूर्तियाँ हैं, जिनमें वे सुरापान करते हुए चित्रित किए गए

हैं। उनके हाथों में सुरापान, बिजौरा नीबू तथा रत्नों की थैली या नेवला रहता है। कुछ वर्ष पूर्व कुबेर की एक सुन्दर अभिलिखित मूर्ति (सं० ३२३२) प्राप्त हुई है, जो ई० तीसरी शती की है। कुबेर के साथ या अलग उनकी स्त्री हारीती की मूर्तियाँ मिलती हैं। वह प्रसव की अधिष्ठात्री देवी मानी गई है। मथुरा-कला में उसका चित्रण प्रायः बच्चों को गोद में लिए हुए मिलती है (एफ० ८, एफ ३० आदि)।

हारीती के अतिरिक्त मथुरा-कला में अन्य यक्षियों की अनेक मूर्तियाँ मिली हैं। पूज्य प्रतिमाओं के साथ या विविध अलंकरणों के रूप में किन्नर, गधर्व, सुपर्ण, विद्याधर आदि की भी मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं।

नाग मूर्तियाँ

प्राचीन ब्रज में नागों का पूजन प्रचलित था, नागों का सम्बन्ध विविध धर्मों के साथ पाया जाता है। भगवान् कृष्ण के भाई बलराम को शेषनाग का अवतार माना जाता है। विष्णु की शय्या अनन्त नागों की बनी हुई कही गई है। जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ तथा सुपार्श्व के चिह्न भी नाग हैं, बौद्ध धर्म के अनुसार मुचुलिंद नामक नाग ने भगवान् बुद्ध के ऊपर छाया की थी तथा नन्द और उपनन्द नागों ने उन्हें स्नान कराया था। रामग्राम स्तूप की रक्षा भी नागों द्वारा की गई (मथुरा शिलापट्ट आई० ९)। ब्रज में नागो की मूर्तियाँ पुरुषाकार तथा सर्पाकार दोनों रूपों में मिली हैं। शेषावतार रूप में बलराम की जो मूर्तियाँ प्राप्त हुई है उनके गले में वैजयन्ती माला आदि आभू-

षण तथा हाथों में मूसल और वारुणीपात्र हैं। मथुरा संग्रहालय में इस प्रकार की कुषाण तथा गुप्तकालीन कई सुन्दर मूर्तियाँ हैं (१३९९,३२१०, सी० १९ तथा ४३५)। नाग की सबसे विशाल मूर्ति सी० १३ है, जो पौने आठ फुट ऊँची है। यह छड़गाँव, जि० मथुरा से प्राप्त हुई थी। इसमें नाग की कुण्डलियाँ बड़े ओजपूर्ण तथा ऐंड़दार ढंग से दिखाई गई है। इस मूर्ति की पीठ पर खुदे हुए लेख से ज्ञात होता है कि यह महाराजाधिराज हुविष्क के समय चालीसवें शक वर्ष (सन् ११८ ई०) मे सेनहस्ती तथा भौणुक नामक दो मित्रों के द्वारा बनवाकर प्रतिष्ठापित की गई। भूमिनाग (२११) तथा दधिकर्ण नाग (१६१०) की भी मूर्तियाँ मथुरा सग्रहालय में प्रदर्शित है। बलदेव में दाऊजी की प्रसिद्ध विशालकाय मूर्ति भी कुषाणकाल की उल्लेखनीय कृतियों में है। ब्रज मे नाग राजाओं के शासनकाल में नाग मूर्तियाँ बड़ी संख्या में निर्मित हुईं।

शक-कुषाण राजाओं की प्रतिमाएँ

मथुरा से शक-कुषाण शासकों की कई अत्यन्त महत्वपूर्ण मूर्तियाँ मिली है। राजाओं की ऐसी मूर्तियाँ भारत में अन्यत्र नही मिलतीं। मथुरा नगर से लगभग ८ मील दूर माँट के समीप कुषाण राजाओं का एक देवकुल था। इसे इटोकरी टीला कहा जाता है। इस टीले की खुदाई से निम्नलिखित तीन शासकों की प्रतिमाएँ प्राप्त हुईं—

विम कैडफाइसिस (सं० २१५)—इस विशालकाय मूर्ति में, जिसका सिर नहीं है, महाराज विम सिंहासनारूढ़ दिखाए गए

हैं। वे लम्बा चोगा, गुलूबन्द, सलवारनुमा पायजामा तथा चमडे के तसमों से कसे हुए मोटे जूते पहने हैं। मूर्ति पर राजा का नाम लिखा है।

कनिष्क (सं० २१३)—कनिष्क कुषाण वंश का सबसे प्रतापी सम्राट् था। इसकी वेशभूषा विम से बहुत मिलती-जुलती है। इसके दाएँ हाथ में राजदंड तथा बाएँ मे तलवार है। मोटे जूते, जिन्हें गिलगिटी जूते कहते है, दर्शनीय है। इस मूर्ति पर भी राजा का नाम लिखा है।

चष्टन (सं० २१२)—चष्टन पश्चिमी भारत के शक-क्षत्रप वंश का प्रारम्भकर्ता था। उसकी मूर्ति की वेशभूषा भी पूर्वोक्त जैसी है। इसका चोगा जरीदार है तथा कमरबन्द भी अलकृत है। मूर्ति पर राजा का नाम उत्कीर्ण है।

इन मूर्तियों के अतिरिक्त अनेक शक-राजकुमारों तथा सरदारों की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। वे लम्बा चोगा और पायजामा पहने हुए दिखाए गए है। हाथ मे भारी माला लिए शकों की कई मूर्तियाँ मिली हैं (जी० १३.२६६१. जे० ४३,११६ आदि) उनकी स्त्रियों को लम्बा घाँघरा पहने प्रदर्शित किया गया है (२८७६)। ईरानी राजकुमारों के कई सिर (१५७,२५६४) तथा शकों के कई अभिलिखित सिर (१२५२, २१२२) बहुत महत्व-पूर्ण हैं।

गांधार कला की शक-महिषी मूर्ति (एफ० ४२)—यह मूर्ति यमुना किनारे स्थित सप्तर्षि टीला से प्राप्त हुई है। यह नीले सिलेटी पत्थर की बनी है और गांधार कला की कृति है, जो मथुरा कला से भिन्न है। मथुरा में इसका पाया जाना

बडे महत्व की बात है। इसी स्थान से प्राप्त खरोष्ट्री के एक शिलालेख से ज्ञात हुआ है कि मथुरा के महाक्षत्रप राजकुल की महारानी कमुइअ (कम्बोजिका) ने यहाँ बौद्ध स्तूप तथा विहार बनवाए। सम्भवतः यह मूर्ति उसी महारानी की है।

उपर्युक्त प्रतिमाओं के अतिरिक्त मथुरा से नागरिकों, सेठों, धमवीरों आदि की मूर्तियों के अनेक सिर मिले है। मथुरा के स्थानीय संग्रहालय मे २७१, २८२७, १५९९, ३४४६ तथा जी० २१ संख्यक पाषाण-सिर कला की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

मिट्टी की मूर्तियाँ

मथुरा-कला में विविध धर्मों की अनेक प्रकार की देव-मूर्तियों के मिलने के साथ ऐसी कृतियाँ भी मिली है जिनका सम्बन्ध मुख्यतया लोक-जीवन से है। ऐसी मूर्तियों में मृण-मूर्तियों की संख्या बहुत है। मिट्टी की कुछ मूर्तियाँ देवी-देवताओं की भी मिली है पर उनकी सख्या थोडी है। अधिकांश मिट्टी की मूर्तियाँ नागरिक तथा ग्रामीण लोक-जीवन पर प्रकाश डालती है। ये अधिकतर टीलों में से तथा यमुना नदी से प्राप्त हुई है। इनके मुख्य दो प्रकार है--एक तो वे जो मौर्यकाल में या उसके पूर्व मातृदेवियों आदि की मूर्तियो के रूप में हाथ से गढ़ कर बनाई जाती थीं और दूसरी साँचों द्वारा। कुछ में इन दोनों प्रकारों का मिश्रण मिलता है। साँचे वाली अधिकांश मूर्तियाँ शुङ्गकाल से लेकर गुप्तकाल तक की हैं। इनमे से कुछ तो लडकों के खेलने के लिए बनती थीं—जैसे हाथी, घोड़े, गाड़ी आदि। खिलौने शेष मूर्तियाँ वे हैं जिनमे जीवनके विविध अङ्गों का वैसा ही प्रदर्शन है जैसा कि हम पाषाण पर पाते है। मथुरा

संग्रहालय की कुछ विशेष उल्लेखनीय मिट्टी की मूर्तियाँ ये हैं—२५९५, जिस पर राजसी ठाठ में एक स्त्री पङ्खा लिए खड़ी है। २८५३, जिस पर कोई राजकुमार रथ पर बैठकर बाहर जा रहा है। ३९२१, जिस पर स्त्री-पुरुष का एक जोड़ा चित्रित है। २३५०, जिस पर किन्नर-किन्नरी हवा में उड़ान ले रहे है। १६२१, जिस पर सुन्दर साड़ी पहने तथा बच्चे को अङ्क में लिए एक स्त्री बैठी है। २५९८, जिस पर शुक-क्रीड़ा का चित्रण है तथा २४२६, जो सुन्दर बालों से सज्जित पुरुष-सिर है। गज-लक्ष्मी (३०४१) कामदेव (२८४९), एक मुख शिवलिग (२४३१) की मृण्मूर्तियाँ भी उल्लेखनीय हैं।

गुप्तकालीन मिट्टी की कुछ बड़ी मूर्तियाँ मथुरा-कला की उत्कृष्ट कृतियाँ है। इनमे से अनेक यमुना नदी से प्राप्त हुई है। २७९४ संख्यक मूर्ति शक्ति धारण किए हुए कार्तिकेय की है। वे अपने वाहन मयूर पर बैठे है। २७४५ में अन्तःपुर के विनोद का चित्रण है। एक राजमहिषी विदूषक के गले में उत्तरीय डाल कर उसे खीच रही है। २७६२ मे एक तपस्वी कटार द्वारा अपना गला काटते हुए दिखाया गया है। २८२४ में पूर्णघट लिए हुए गगनचारी सुपर्ण अङ्कित है। टी० ६ में दाएँ हाथ में मगल कलश धारण किए गङ्गा बड़ी आकर्षक मुद्रा में खड़ी दिखाई गई है। २४१९ संख्यक प्रतिमा चतुर्भुजी महाविष्णु की है।

इस प्रकार हम देखते है कि मथुरा की विशाल कला-राशि में भारतीय इतिहास और सस्कृति के अध्ययन की कितनी मूल्यवान् सामग्री उपलब्ध है।

अध्याय ३

चित्रकला

सोलहवीं शती के पहले व्रज में चित्रकला के स्वरूप का ठीक-ठीक पता नहीं चलता। जिस प्रदेश में वास्तुकला एवं मूर्तिकला का एक लंबे समय तक विकास होता रहा वहाँ चित्रकला की ओर भी लोगों की प्रवृत्ति रही होगी। परंतु यहाँ के प्राचीन चित्र उपलब्ध नहीं है।

मुगल सम्राट् अकबर के समय अन्य कई ललित कलाओं के साथ चित्रकला का भी पुनरुद्धार हुआ। 'गीतगोविंद' 'बाल-गोपालस्तुति' तथा कई जैन ग्रंथों की सचित्र प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं। १६ वीं शती के ये चित्र पश्चिम भारत की 'अपभ्रंश-शैली' के हैं। इनमें श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का आलेखन मिलता है। स्त्री-पुरुषों की तत्कालीन वेशभूषा का यथार्थ चित्रण इनमें उपलब्ध है। अकबर ने ईरान की चित्रकला तथा उक्त अपभ्रंश शैली से उद्भूत राजस्थानी चित्रकला के समन्वय द्वारा एक नई शैली का प्रारंभ किया, जिसे 'मुगल शैली' कहते हैं। अकबर से लेकर शाहजहाँ के समय तक मुगल शैली के बहु-संख्यक चित्र प्राप्त हुए हैं।

अपभ्रंश-शैली के प्रायः साथ-साथ कश्मीर में भी एक चित्र-शैली चल रही थी, जिसे 'काश्मीर शैली' कहते हैं। कृष्ण-लीला के अनेक सुन्दर चित्रों का निर्माण कश्मीर में हुआ।

ब्रज के कुछ गेय पदों में काश्मीरी चित्रों की चर्चा मिलती है। वास्तव में काश्मीरी साज-सज्जा और चित्र-रचना इतनी आकर्षक थी कि वह ब्रज में बहुत प्रचलित हुई। अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि परमानंद जी का एक पद इस प्रकार है—

"तहाँ रच्यो हिंडोरो धवलबानी काश्मीरी खभ।
हीरा-पिरोजा पाँति मुक्ता और अति आरंभ॥
बनी चित्र-विचित्र शोभा तीर धनु सधान।
जहँ राम-रावण युद्ध क्रीड़ा देखिये अनुमान॥
जहँ बहुत गोरस माट मथना चलन कंकण-हीर।
मल्लिका सिर गूँथ बेनी श्रवण शोभित बीर॥"

सूरदास जी ने भी चित्र-रचना का उल्लेख इस प्रकार किया है—

"चित्र सराहत मुर-मुर चितवन गोपी अधिक सयानी।"

× × ×

"ग्वालिनि आप तन देख, मेरे लाल तन देखरी।
मीत जो होय तो चित्र अवरेख री॥"

राजस्थानी-शैली का उद्भव पश्चिम भारत की पूर्वोक्त अपभ्रंश शैली से माना जाता है। इस पर काश्मीर की प्राचीन चित्रकला का भी प्रभाव पड़ा। सोलहवीं शती के बाद राजस्थानी चित्र-शैली का विस्तृत प्रसार हुआ। जैन-पोथियों को चित्रित करने की जो प्रणाली गुजरात तथा पश्चिमी राजस्थान में प्रचलित थी। वह सोलहवीं शती के बाद भी जारी रही।

परन्तु अपभ्रंश शैली का स्थान राजस्थानी शैली ने ले लिया। जैन-ग्रंथों तथा संस्कृत-प्राकृत की अन्य कई पोथियों में राजस्थानी शैली के चित्र मिले हैं। महाकवि केशवदास की 'रसिकप्रिया', बिहारी की 'सतसई', सुन्दरदास कृत 'सुन्दर-शृङ्गार' आदि ब्रजभाषा के शृङ्गार-प्रधान ग्रंथों की भी अनेक सचित्र प्रतियाँ मिली हैं, जिन पर राजस्थानी-कला के चित्र हैं।

ब्रज में सोलहवीं शती के प्रारंभ से राजस्थानी-शैली का एक महत्वपूर्ण केन्द्र स्थापित हुआ। नाथद्वारा के चित्रों में राधा-कृष्ण की जो विविध लीलाएँ चित्रित हैं, उनका विकसित रूप पूर्वी राजस्थान के किशनगढ़, मथुरा और गोवर्धन में मिलता है। ब्रज की इस चित्र-शैली में मत्स्य के आकार वाली बाँकी आँख का प्रदर्शन दर्शनीय है। किशनगढ़ में प्राप्त कुछ चित्रों में राधा-कृष्ण की छवि का अङ्कन अत्यन्त मनोरम हुआ है। बरसाना की मोर-कुटी में राधा-कृष्ण की युगल-छवि का एक सुन्दर चित्र सुरक्षित है, जिसमें राधा-कृष्ण की छवि का आलेखन अत्यंत सुरुचि पूर्ण ढङ्ग से किया गया है। इस चित्र में विविध आभूषणों से अलंकृत राधाकृष्ण नृत्य की मुद्रा में दिखाए गए हैं। उनकी भावभंगी, अङ्गविन्यास तथा प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण कलाकार ने बड़े ही प्रभावोत्पादक ढग से किया है। चित्र में नीचे यह दोहा लिखा है—

"मै तू, तू मैं हो गये, मैं तन तू मम प्रान।
अब कोऊ ना कहि सकै, मैं अरु तू है आन॥"

यह मोरकुटी मानपुर गाँव के सामने पहाड़ों के शिखर पर स्थित है। कहा जाता है कि मानिनी राधिका को प्रसन्न करने के लिए श्रीकृष्ण यहाँ पर मोर बनकर नाचे थे। मथुरा के कवि नवनीतजी का इस विषय पर एक छंद इस प्रकार है—

छोर पटुकाके ये जुगल पंख फहरान,
काछनी की घूमघेर पूँछ अनुहारी कौ।
'नवनीत' चन्द्रिका विचित्र वरसोहत है,
अङ्ग घनस्याम नीलकंठ छवि भारी कौ॥
कुहुक विनय सिर सुरस कलंगी दिये,
पिये नव नेहमेह विदित बिहारी कौ।
जोरकर अधिक अधीन ह्वै तिया की ओर,
मोर बनो नाचै चित जोर प्रानप्यारी कौ॥

सोलहवीं और सत्रहवीं शती में मथुरा, वृंदावन, गोकुल, बरसाना और गोवर्धन के अनेक मंदिरों में कृष्ण-लीला का चित्रण किया गया। परंतु इन स्थानों में औरङ्गजेब के समय में बड़ी बरबादी हुई, जिसके फलस्वरूप प्राचीन इमारतों के साथ उनके चित्र भी नष्ट हो गये। अठारहवीं शती में राजस्थानी कला-शैली का पुनरुत्थान हुआ। जयपुर और नाथद्वारा के अतिरिक्त उदयपुर, जोधपुर, बूँदी, दतिया तथा किशनगढ़ में विविध चित्रों का निर्माण बड़ी संख्या में होने लगा। कागज पर बनाए गए चित्रों के अतिरिक्त भित्ति-चित्र तथा पट-चित्र भी बनाए जाते थे। इन चित्रों के मुख्य विषय कृष्ण-लीला, राग-माला, बारहमासा तथा लोक-कथाएँ हैं। अठारहवीं और उन्नीसवीं शती की अनेक सचित्र पोथियाँ भी मिली हैं। बिहारी-सतसई, केशव की 'रसिक-प्रिया', मतिराम का 'रसराज' आदि की अनेक सचित्र प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं। मथुरा के प्राचीन द्वारिकाधीश-मंदिर तथा गोवर्धन की भरतपुर राजाओं की छतरियों पर भित्ति-चित्रों के उनेक सुंदर रूप उरेहे गए। गोवर्धन की दो विशाल छतरियों में ये चित्र अब भी सुरक्षित हैं। इनमें कृष्ण की रास आदि विविध लीलाएँ, युद्ध तथा लोक

जीवन के विविध दृश्य विशेषरूप से उल्लेखनीय है। मथुरा के प्रसिद्ध श्री कृष्ण-जन्मस्थान के समीप पोतरा-कुंड में तथा शिव-ताल नामक स्थान में ब्रज की चित्रकला के कुछ सुंदर रूप अब भी देखे जा सकते हैं।

वस्त्रों पर भी कृष्ण-लीला सम्बंधी विविध चित्र बताए जाते थे। इन्हें 'चित्र-पट' कहते थे। मंदिरों में विविध उत्सवों के अवसर पर इन पटों को टाँगा जाता था। ब्रज में ऐसे चित्र-पट अब भी बनते हैं तथा वस्त्रों की कलापूर्ण छपाई का काम भी होता है।

ब्रज में रग-वल्ली (रंगोली) का भी बहुत प्रचार है। रङ्गों द्वारा अनेक प्रकार के चित्र और चौके बनाना 'रङ्ग-वल्ली' कहलाता है। इसका सबसे उत्तम उदाहरण सांझी-कला है। इसमें कागज के अनेक खाके काटकर उनकी सहायता से रङ्ग भरना पड़ता है। सूखे रङ्गों के ये चित्र अनेक प्रकार के होते है। कुछ चित्र पानी के ऊपर भी बनाए जाते हैं। यह कला ब्रज की एक अनूठी कला है। मथुरा के ज्योतिषी बाबा की साँझी सबसे अधिक प्रसिद्ध है। साँझी का उल्लेख प्राचीन ब्रजभाषा-साहित्य में बहुत मिलता है। गोपियाँ फूलों और रङ्गों की सहायता से इस प्रकार के चित्रों की रचना करती थीं।

ब्रज में विविध उत्सवों और त्यौहारों के अवसर पर आकर्षक फूल-बँगले बनते हैं। इनमें केले के कलापूर्ण अलंकरण बनाए जाते हैं। सावन में हिंडोलों के अवसर पर भी ब्रज की चित्रकला के दर्शन होते हैं। रास-लीला के विविध शृङ्गार भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। ब्रज के गाँवों में विविध प्रकार के भित्ति-चित्र और वृत-चित्र देखने को मिलते हैं।

अध्याय ४

ब्रज का संगीत

ब्रज में संगीत की परंपरा बहुत प्राचीन है। ई० पूर्व ३०० से पहले के पुरातत्त्व सम्बन्धी अवशेष हमें ब्रज प्रदेश में नहीं प्राप्त हो सके, अन्यथा संगीत के संबंध के उन अवशेषों द्वारा कुछ जानकारी प्राप्त हो सकती थी ई० पूर्व ३०० से लेकर लगभग ६०० ई० तक की जो बहुसंख्यक कलाकृतियाँ मिली है उनसे ज्ञात होता है कि ब्रज में संगीत का स्थल बहुत ऊँचा था। यहाँ के निवासियों के धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन का सङ्गीत एक अपरिहार्य अङ्ग था। लखनऊ तथा मथुरा के पुरातत्त्व संग्रहालय में ब्रज से प्राप्त ऐसे कितने ही शिलाखंड-हैं जिन पर मनोविनोदार्थ वंशी, वीणा आदि बजाती हुई वनिताएँ, यात्रोत्सवों में साथ-साथ गाते-बजाते हुए स्त्री-पुरुष तथा अनेक प्रकार के नृत्यों में संलग्न नारियाँ अङ्कित हैं। यहाँ कुछ उदाहरण दिए जाते हैं।

[१] नर्तकी यक्षी की मूर्ति (सं० जे० २)—यह सुन्दर मूर्ति एक वेदिका—स्तम्भ के ऊपर उकेरी हुई है। यक्षी नृत्य मुद्रा में खड़ी है। वह मोटा गुलूबंद-कर्णफूल, मुक्ताहार, अङ्गद (बाजूबंद) कटक (हस्ताभूषण) तथा नूपुर (पैर के आभूषण) पहने है। उसकी कमर पर एक चौड़ी मेखला है। उसके कुछ ऊपर वह एक वस्त्र कस रही है। सिर पर मुक्ता-

गथित भारी केशपाश है। संस्कृत साहित्य में इस प्रकार के जूड़े को 'धम्मिल्ल' कहा गया है। नर्तकियों की इस प्रकार की वेशभूषा का वर्णन संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। यह मूर्ति ई० पू० दूसरी शताब्दी की है और तत्कालीन मथुरा की नर्तकियों का एक सुन्दर उदाहरण है।

[२] लखनऊ संग्रहालय की नर्तकी मूर्ति—(सं० बी० ७५)—यह मूर्ति भी एक वेदिका स्तंभ पर अङ्कित है। नर्तकी कटि से लेकर घुटनों के कुछ ऊपर तक वस्त्र पहने हैं। शेष भाग अनावृत है। आभूषणों में वह कर्ण कुण्डल, गुलूबंद, एकलड़ी हार, (एकावली), कटक तथा मोती नूपुर (झाँझ) पहने है। नृत्य करते-करते उसने अपने दोनों घुटने जमीन पर टेक दिए हैं। दायाँ हाथ नाभि के सामने आ गया है और बायाँ सिर के ऊपर उठा है। नृत्य के वेग के कारण उसकी एकावली हिल-डुल गई है। उठे हुए पैरों से गिरकर झांझ नीचे आ गई है। नर्तकी का भाव बड़ा ही आकर्षक है। यह कुषाण-कालीन (प्रथम या दूसरी शताब्दी की) कृति है।

[३] अशोक दोहद का दृश्य (मथुरा संग्र० जे० ५५)—इसमें नर्तकी के बाएँ पैर के आघात द्वारा पुष्पित अशोक है। नर्तकी अशोक के एक फूल को दाएँ हाथ से पकड़ कर अपनी सफलता पर गर्वान्वित हो रही है। कालिदास ने सुंदरी के चरणाभिघात द्वारा अशोक के पुष्पित होने की कवि-कल्पना को इस प्रकार व्यक्त किया है—

"एकः सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी।"

(मेघदूत, २, १८)

[४] **असि नृत्य** (लख० संग्र० जे० २६५)—इस मूर्ति में कदम्ब वृक्ष के नीचे खड़ी हुई नटी बाएँ हाथ में तलवार पकड़े है तथा दाएँ से कदम्ब की डाली को झुकाकर उसके पुष्पों से अपना केश-शृङ्गार करने का अभिनय कर रही है।

[५] **प्रेमोन्मत्ता का नृत्य** (लख० सं० बी० ९२)—शुक पक्षी द्वारा अपने प्रेमी का आगमन-समाचार पाकर सुन्दरी हर्षोन्मत्ता होकर नृत्य करती है। कामदेव का संदेश-वाहक तोता आगत पति का के नीवी-विमोचन के बहाने उसे किसी भावी आनन्द का सन्देश दे रहा है।

[६] **धर्म में सङ्गीत** (लख० सं० जे० २६८)—इस वेदिका स्तंभ पर ऊपर के भाग में एक दम्पत्ति स्तम्भ की प्रदक्षिणा कर रहे हैं। नीचे खपड़ैल के तले नृत्य हो रहा है। आभूषणों से सुसज्जित एक नर्तकी नृत्य कर रही है और दो खड़ी हुई स्त्रियाँ ताल दे रही हैं। नीचे बैठी हुई दो वनिताएँ ढोलक बजा रही हैं। [संख्या ३ से ६ तक की मूर्तियाँ कुषाण-काल की हैं।]

(७) **यात्रोत्सव** (मथुरा सं० आई० ३८२)—प्रस्तुत शिलाखंड पर नगरद्वार से बाहर निकल कर गाते-बजाते धर्मयात्रा में जाते हुए लोग दिखाए गए हैं। तीन व्यक्ति बड़े डफ बजा रहे हैं और बीच में एक बालक शङ्ख बजाता हुआ जा रहा है। इसका निर्माण-समय ई० पू० प्रथम शती है।

(८) **मथुरा संग्रहालय में** यात्रोत्सव का एक दूसरा

दृश्य पत्थर के एक टुकड़े, पर चित्रित है । इसमें एक पुरुष वीणा बजाते हुए जा रहा है। उसके पीछे एक पुरुष वंशी बजा रहा है फिर हाथ जोड़े एक स्त्री खड़ी है और उसके पीछे दो बालक तथा एक पुरुष हाथ जोड़े आ रहे है।

(९) **वीणा वादिका** (मथुरा सं० जी० ४८)—इस पर ताड़ वृक्ष के नीचे एक पर्यक पर बैठी हुई स्त्री वीणा पर तान दे रही है।

(१०) **वंशी वादिकाएँ** (मथु० स० एफ० १७, १८ तथा २२)—पुष्पित वृक्षों के नीचे खड़ी हुई, विविध आभूषणों से सुसज्जित वनिताएँ वंशी बजा रही है ।

(११) स० ४०५ पर नृत्योत्सव में सलग्न कुटुम्बिनी स्त्रियों का चित्रण है।

(१२) इसी प्रकार शिलापट्ट सं० २७६ पर बाजे गाजे समेत पूजनार्थ जाते हुए एक राजकुमार दिखाया गया है।

(१३) **अन्तःपुर में संगीत**—इस शिलापट्ट पर तीन महिलाएँ अङ्कित है—दो मोढ़ों पर आसीन है और तीसरी खड़ी है। मोढ़े पर बैठी हुई एक स्त्री सप्तत्री (सात तारों वाली) वीणा बजा रही है और उसके सम्मुख बैठी हुई स्त्री गाना गा रही है। दाहिने हाथ के द्वारा वह तान मिलाती हुई प्रतीत होती है। खड़ी हुई स्त्री वंशी बजाने में रत हैं। [सं० ८ से १३ तक की सभी मूर्तियाँ कुषाण-कालीन हैं।]

सङ्गीत का यह मनोरजक उन्मुक्त रूप, जो कला और साहित्य दोनों में मिलता है, ब्रज में एक दीर्घ काल तक जारी रहा। प्राप्त कलावशेषों के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि मुसलमानों के आगमन के पूर्व तक यहाँ प्राचीन सङ्गीत की धारा बहती रही होगी। गुप्त काल के बाद की सङ्गीत-परिचायक मूर्तियों की सख्या बहुत कम है। १२ वीं शताब्दी से १६ वीं शताब्दी के मध्य तक ब्रजभूमि पर लगातार एक के बाद दूसरा आक्रमण होता रहा, जिससे यहाँ की संस्कृति को गहरा धक्का पहुँचा। राजनैतिक अशान्ति में सङ्गीत का ह्रास स्वाभाविक था। सोलहवीं शताब्दी के मध्य में सांस्कृतिक पुनरुत्थान के साथ सङ्गीत का ब्रजभूमि में अभ्युदय हुआ।

उस सङ्गीत को रास ध्रुपद, तान, खयाल, लावनी आदि के रूपों में हम ब्रज में विकसित पाते हैं।

ब्रज के 'ध्रुपद' प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि 'ध्रुवा' नामक गीत से ध्रुपद का आविष्कार हुआ। सोलहवी शताब्दी से ध्रुपद की शास्त्रीय गायन-शैली का ब्रज में विशेष प्रचार मिलता है। ये गीत वीणा, पखावज, तम्बूरा आदि के साथ गाये जाते हैं। यह गायन-पद्धति कव्वाली, ठुमरी आदि विदेशी गति-शैलियों से भिन्न है, और उनसे कही अधिक सरस तथा गम्भीर है। अष्टछाप-कवियों के समय ब्रज में सङ्गीत की मधुर धारा प्रवाहित हुई। सूरदास, नन्ददास, गोविंदस्वामी, कृष्णदास आदि स्वयं गायक थे। उन्होने विविध गीतों का अगाध भण्डार अपनी रचनाओं में भर दिया। ब्रज में स्वामी हरिदास जी सङ्गीत-शास्त्र के प्रकांड आचार्य तथा गायक हुए। तानसेन—जैसे उद्भट सङ्गीतज्ञ भी उनके शिष्य माने जाते हैं। मथुरा, वृन्दावन, गोकुल तथा गोवर्धन बहुत काल तक सङ्गीत

के केन्द्र रहे, जहाँ दूर-दूर के सङ्गीतज्ञ तथा कला-प्रेमी आते रहे। प्रसिद्ध है कि सम्राट् अकबर भी श्रीहरिदास स्वामी के मधुर गीतों के सुनने का लोभ संवरण न कर सके और वृन्दावन आये।

रास ब्रज की अनोखी वस्तु है। ब्रज में 'रास' का वर्तमान रूप कबसे प्रारम्भ हुआ, इसके सम्बंध मे कई मत है। निम्बार्क-सम्प्रदाय के श्री घमंडदेव को कुछ लोग रास का प्रारम्भ-कर्ता मानते हैं। दूसरे मतानुसार गौड़ीय-संप्रदाय के श्री नारायण भट्ट को यह श्रेय दिया जाता है। नारायण भट्ट जी अनेक ग्रंथों के प्रसिद्ध लेखक हैं। उन्होंने ब्रज-यात्रा का भी प्रचार किया। 'रास' के प्रारम्भ और प्रचार में उनका महत्वपूर्ण योग प्रतीत होता है। संभव है कि घमंडदेव जी भी रासलीला के प्रारम्भ-कर्ताओं में से रहे हों। वर्तमान समय मे रास के दो मुख्य रूप मिलते हैं—एक तो शास्त्रीय रूप और दूसरा विविध लोकनृत्यों, सवादों आदि पर आधारित रूप। पिछले पर आधुनिक नाट्य का प्रभाव स्पष्ट है। रास की अधिकांश लीलाएँ भागवत, पुराण तथा वैष्णव भक्तों की रचनाओ पर आधारित है। इन लीलाओं में अष्टछाप के कवियों, हरिराम जी व्यास, स्वामी हरिदास जी तथा परवर्ती भक्त-कवियों के पदों का गायन होता है। 'रास' के नृत्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमे कृष्ण और सखियों के अलग-अलग नृत्यों के अतिरिक्त विविध प्रकार के मंडल-नृत्य भी होते है। इनमें महारास तथा लकुट रास के नृत्य विशेष उल्लेखनीय है। 'रास' में सगीत के तीनों अङ्गों—गीत, वाद्य तथा नृत्य का समन्वय मिलता है। ब्रज की संस्कृति को रास के द्वारा बड़ी सुन्दरता के साथ व्यक्त किया जाता है। रास के कथनोपकथन,

वाद्यों के साथ चलने वाले गीत तथा भावात्मक नृत्य भारतीय संगीत में विशिष्ट स्थान रखते हैं।

ब्रज की तान तथा खयाल-लावनी भी बहुत प्रसिद्ध हैं। खयाल-लावनी के गायकों के अनेक वर्ग है। ब्रज की भगत, जिसे 'स्वाँग' कहते हैं, वह भी यहाँ बहुत प्रचलित है। मथुरा और हाथरस इसके मुख्य केन्द्र माने जाते हैं। लोक-गीतों की तरह ब्रज में चरकला, चाँचर, ढांड़ा-ढांड़ी आदि विविध रोचक लोक-नृत्य प्रचलित है।

ब्रज में वाद्य-यत्रों के भी अनेक रूप मिलते हैं। बहुत से वाद्यों की चर्चा ब्रज भाषा के भक्त कवियों ने अपनी रचनाओं में की है। ब्रज की प्राचीन कला में भी अनेक प्रकार के वाद्य-यंत्र बने हैं। होली आदि त्यौहारों के अवसर पर यहाँ के अनेक वाद्य-यन्त्र देखने को मिलते है।

अध्याय ५

मथुरा-कला की विशेषता

ब्रज के केन्द्र मथुरा में एक नई कला-शैली का प्रादुर्भाव हुआ, जिसे 'मथुरा-कला' कहते है। ई० सन् के प्रारम्भ से लेकर छठी शती के अन्त तक का युग मथुरा-कला का 'स्वर्णयुग' कहा जा सकता है। इसमें भी इस युग का प्रथमार्ध (ई० ३०० तक) विशेष महत्त्व का है। इस काल में यहाँ के शक-कुषाण शासकों को कला के सौंदर्य ने अधिक आकृष्ट किया। मथुरा के कलाकारों ने अपने संरक्षकों की इस भावना का स्वागत किया और उसकी पूर्ति के लिए कला के शृङ्गार पक्ष को उन्नत किया। शक-कुषाण काल के जो तोरण, वेदिका-स्तम्भ, सूची, आयागपट्ट तथा विविध मूर्तियाँ मिली हैं, उन पर इसके जीते-जागते प्रमाण मिलते है। कलाकारों ने प्रकृति तथा मानव जीवन—इन दोनों से कला के अलङ्करण की सामग्री को जिस खूबी से छाँट कर अपनी कृतियों पर उसका उपयोग किया है, वह सचमुच सराहनीय है। कला के दिव्य आदर्शों से प्रेरित होकर उन्होंने सृष्टि की रूप-सामग्री से अपनी रचनाएँ विभूषित कर उन्हें शाश्वत रूप प्रदान किया। उत्फुल्ल कमल आदिक पुष्पों से सुशोभित जलाशय, नदी, पर्वत, झरने तथा अशोक, कदम्ब, नागकेशर, चम्पक आदि पुष्पित वृक्ष, अनेक भाँति की लता-बेलें, पत्ररचनाएँ एवं प्रकृति में सानन्द विचरण करने वाले पशु-पक्षी—ये सभी कलाकारों द्वारा आवश्यकतानुसार

ग्रहण किये गए है। इन प्राकृतिक उपकरणों के साथ मानवी रूप का सामंजस्य करना भारतीय शिल्पियों और विशेष: कर मथुरा के कलाविदों की एक अनोखी देन है। भारतीय साहित्य में संसार को पूर्णरूप से समझने तथा जीवन का वास्तविक आनंद प्राप्त करने के लिए प्रकृति को एक अनिवार्य अंग माना गया है। भारतीय कला विदों ने भी अपने क्षेत्र में इस सत्य को चरितार्थ किया। मथुरा की कला में वेदिकास्तम्भों आदि पर हमें इसका प्रत्यक्ष चित्रण मिलता है। कहीं वनों में स्त्री-पुरुषों द्वारा पुष्प-सचय किया जा रहा है, कहीं निर्झरों और जलाशयों में स्नान क्रीड़ा के दृश्य, कही सुंदरियों के द्वारा मंजरी-पुष्प या फल दिखाकर लुभाते हुए शुकादि पक्षियों का कहीं उनके केशों में गुथे हुए मुक्ता जालों अथवा उनकी दंत पंक्तियों के लोभी हसो का और कहीं अशोक, चंपक, बकुल कदंब आदि वृक्षों की डाली थामे सन्नतांगी रमणियों के ललित अंग-विन्यासों का चित्रण है।

सौंदर्य के अनिंद्य साधन के रूप में नारी का चित्रण मथुरा कला में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मथुरा के कलाकारों को शृंगार के स्वथ्य तथा उत्कृष्ट रूप का आलेखन अभीष्ट था, जिसके द्वारा लोकरंजन के साथ-साथ समाज और धर्म को निष्क्रिय तथा निर्जीव होने से बचाया जा सके। उन्होंने इस स्पृहणीय उद्देश्य को चरितार्थ करने के लिए नारी के श्री रूप को ग्रहण कर उसे भारतीय वेश-भूषा तथा अलंकारों से मंडित कर लोक के समक्ष रखा। मथुरा के वेदिकास्तम्भों पर विविध आभूषणों से अलंकृत नारियों के झीने रेशमी वस्त्रों से झाँकता सुकुमार यौवन तथा सौंदर्य अंकित किया गया है, जो कलात्मक शृंगार के ज्वलन्त उदाहरण रूप में अमर रहेगा।

लौकिक सौंदर्य की अभिव्यक्ति के साथ मथुरा के कलाकारों ने आध्यात्मिक भावों का अंकन अत्यंत सफलता के साथ किया है। बुद्ध, विष्णु, शिव, जैन तीर्थंकर आदि की कितनी ही प्रतिमाओं में हमें जहाँ सुचारु अंग-विन्यास के दर्शन होते हैं वहाँ एक दिव्य आध्यात्मिक गांभीर्य के भी। लोक और परलोक के भावों का यह अद्भुत समन्वय भारतीय धर्म, दर्शन, साहित्य और कला का प्राण है।

मूर्ति-विज्ञान की दृष्टि से भी मथुरा कला का महत्वपूर्ण स्थान है। पीछे बताया जा चुका है कि यहाँ भारत के सभी मुख्य धर्मों के केन्द्र स्थापित थे और उन धर्मों से संबधित प्रतिमाओं का निर्माण यहाँ बड़े रूप में होता था। कुछ देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ तो सर्वप्रथम मथुरा में ही निर्मित हुईं। बुद्ध-बोधिसत्व की अनेक मूर्तियों के अतिरिक्त अनेक तीर्थंकरों तथा हिंदू-देवों की प्रतिमाओं के निर्माण का श्रेय मथुरा के कलाकारों को प्राप्त है। कुषाण, गुप्त एवं पूर्वमध्यकाल में कुछ ऐसी प्रतिमाओं का निर्माण ब्रज में हुआ जो मूर्तियों के शास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्व की हैं। इनमें से कुछ तो अत्यंत दुर्लभ कलाकृतियां हैं।

मथुरा-कला अपने विश्रुत गुणों के कारण इतनी सिद्ध हुई कि भारत के अन्य प्रदेशों में भी उसकी लोक-प्रियता बढ़ी। कौशांबी (जि० इलाहाबाद), काशी, श्रावस्ती (जि० गोंडा), पाटलिपुत्र (पटना), सांची (मध्य प्रदेश) आदि स्थानों में मथुरा कला की लाल पत्थर वाली अनेक कलाकृतियाँ उपलब्ध हुई हैं, जो वहां से बनाकर इन स्थानों में भेजी गई होंगी। सारनाथ और

श्रावस्ती में विशालकाय बोधिसत्त्व प्रतिमाएँ उसी प्रकार की मिली हैं जैसी कि मथुरा में मिली हैं। उक्त दोनों मूर्तियों के संबंध में लेखों द्वारा ज्ञात हुआ है कि मथुरा के त्रिपिटाकाचार्य बौद्ध भिक्षु बल द्वारा उनका निर्माण करवाया गया था।

भारत ही नहीं, विदेशों में भी मथुरा-कला का प्रभाव पाया जाता है। अफगानिस्तान के बेग्राम (प्राचीन कपिशा) नामक स्थान में खुदाई से हाथी-दाँत की बनी हुई अनेक सुन्दर मूर्तियाँ प्राप्त हुई है। इनमे स्त्री-पुरुषों की आकृति, वेशभूषा, विविध अलंकरण तथा अभिप्राय उसी प्रकार के हैं जैसे कि मथुरा-कला में मिलते हैं। मध्य एशिया की पूर्वमध्यकालीन अनेक कलाकृतियों पर भी मथुरा कला की छाप दिखाई पड़ती है। कुछ विद्वान् दक्षिण-पूर्वी एशिया की प्राचीन कला में भी मथुरा कला का प्रभाव मानते हैं।

मथुरा और उसके आस-पास कुषाण-काल की बहुसंख्यक मूर्तियों के मिलने से ज्ञात होता है कि कुषाण-काल में यहाँ मूर्ति-कला का एक बड़ा केन्द्र स्थापित हो गया था। संभव है कि मथुरा में इस काल में मूर्ति-कला के सम्यक प्रशिक्षण की भी व्यवस्था रही हो और यहाँ सुदूर स्थानों के विद्यार्थी कला के विविध अंगों की शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते रहे हों।

हमारे प्रकाशन !

*

१—सूर का वसंत वर्णन	श्री चुन्नीलाल 'शेष'	४)
२—ब्रज के अनुष्ठान	,,	२)
३—ब्रज की रासलीला	श्री शर्मनलाल अग्रवाल	२)
४—ब्रज की लोक-कहानियाँ	श्री बैजनाथ दानी	२)
५—उत्तरप्रदेश के लोक गायक	श्री नन्दराम चतुर्वेदी 'नन्दू'	२)
६—ब्रज महात्म	श्री कृष्णदत्त वाजपेयी	।)
७—ब्रज के लोक गीत	श्री चन्द्रभान रावत	२)
८—ब्रज बसुन्धरा	श्री कैलाशचन्द शर्मा	२)
९—ब्रज की कला	श्री कृष्णदत्त वाजपेयी	२)

प्रत्येक पुस्तक का आकर्षण कवर, पक्की जिल्द, सुन्दर छपाई

देशबन्धु पुस्तकालय, मथुरा.

फलक १

क) हल और मूसल लिए बलराम;
समय ई० पूर्व दूसरी श०।

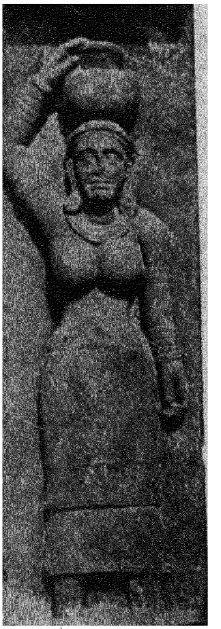

(ख) सिर पर दही की मटकी रखे हुए
ब्रज की ग्वालिन कुषाण काल

फलक २

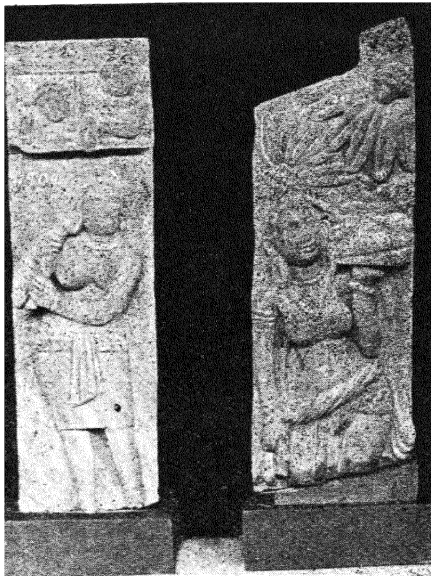

(क) मथुरा के दो वेदिका स्तम्भ ।
बाईं ओर स्नान के बाद बाल निचोड़ती हुई सुंदरी दिखाई गई है। दाईं ओर अशोक वृक्ष के नीचे प्रसाधिका स्त्री खड़ी है । कुषाण काल

(ख) कालियनाग का दमन करते हुए भगवान् कृष्ण । गुप्त काल ।

फलक ३

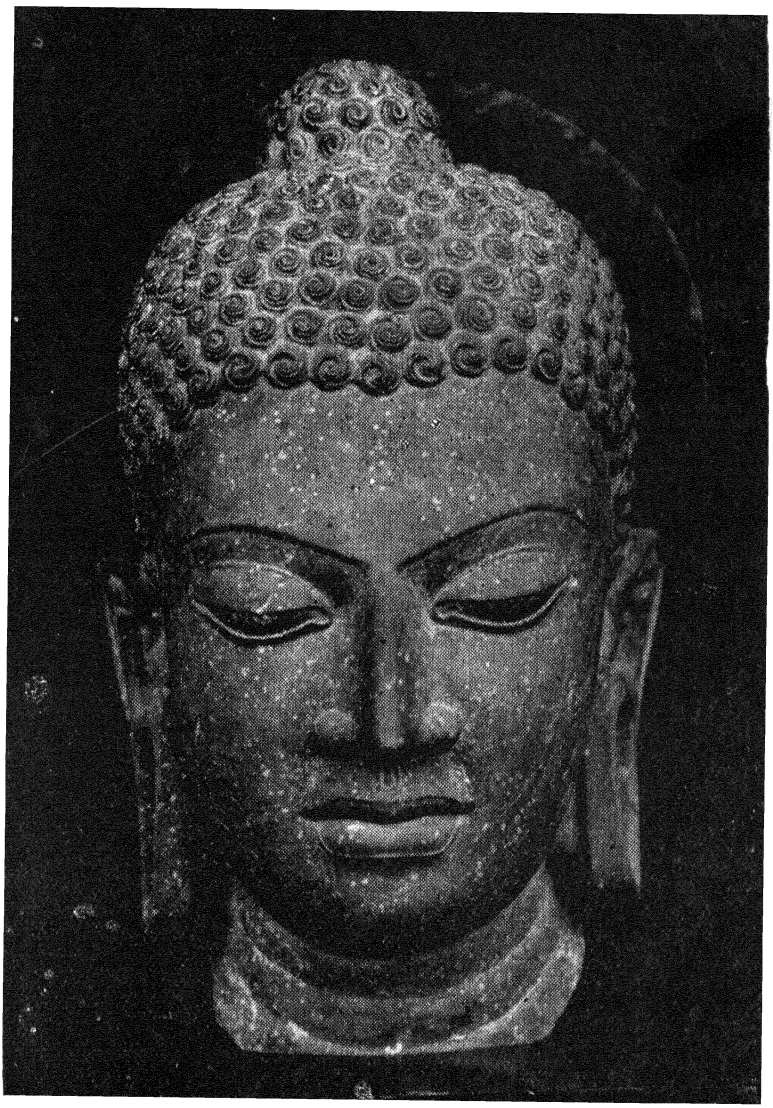

घुंघराले बालों सहित बुद्ध का मस्तक । गुप्त काल

अशोक वृक्ष के नीचे आकर्षक मुद्रा में खड़ी हुई
शाल भंजिका स्त्री । गुप्तकाल ।

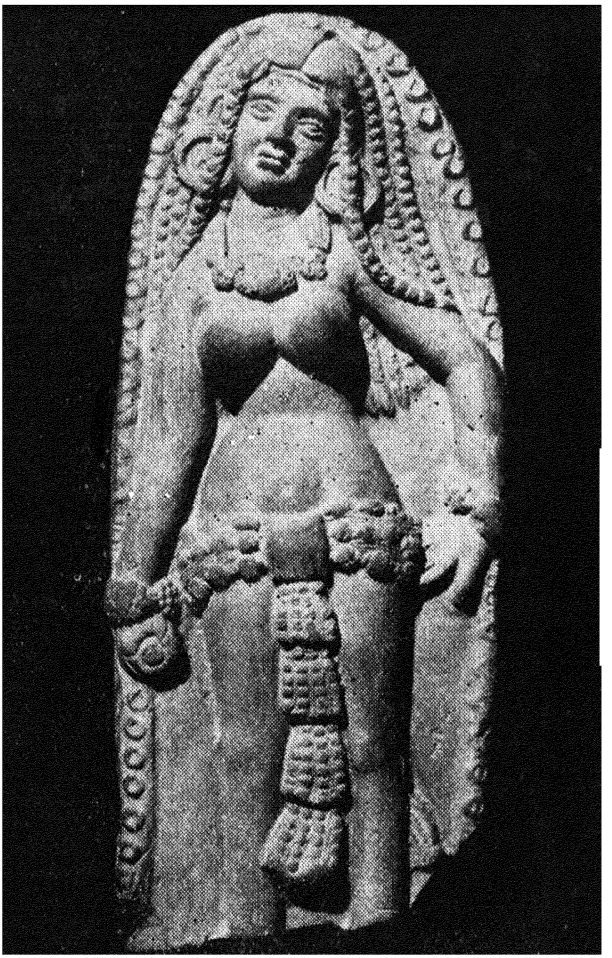

मिट्टी की सर्वाङ्ग सुन्दर स्त्री-मूर्ति। उसके दाएँ हाथ में फल है; बायाँ हाथ मेखला पर है। समय ई० चौथी शती

फलक ६

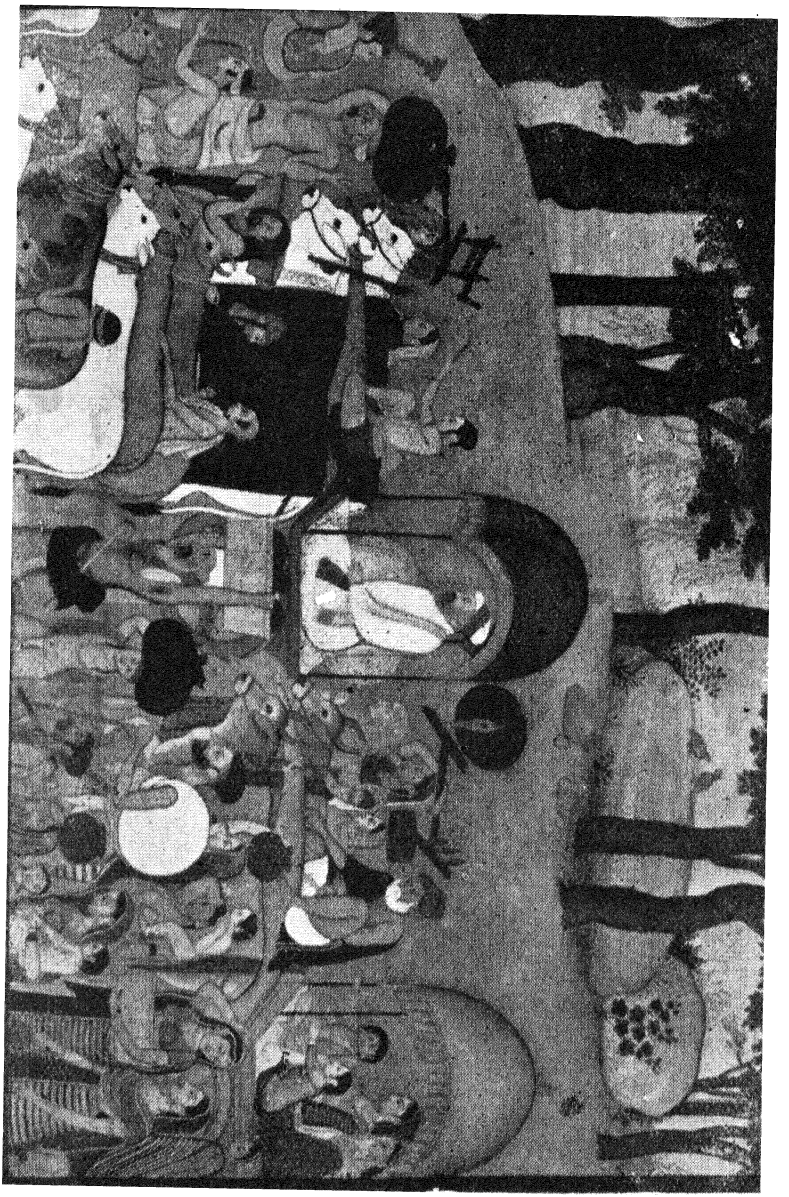

फलक ८

बोधि वृक्ष के नीचे अभय मुद्रा में स्थित बुद्ध की सर्वाङ्गपूर्व